विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१४ फरवरी—१९९५ अंक—२

रा[illegible] ८४१ ३०१ (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११६. श्रीरामचन्द्र गुप्त, लुमडिंग (आसाम)
११७. श्री चन्द्रकान्त स० नागपुरे (नागपुर)
११८. श्री अच्छे लाल श्रीवास्तव (उ० प्र०)
११९. संत जगदम्बिका (प्रयाग)
१२०. श्री अजय बलदवा, जयपुर (आसाम)
१२१. श्री बी० एस० दुबे, पुणे (महाराष्ट्र)
१२२. श्री पालीराम शर्मा, लुमडिंग (आसाम)
१२३. श्रीमती चन्द्रिका कालरा (बम्बई)
१२४. श्रीरामकृष्ण आश्रम, श्रीनगर (कश्मीर)
१२५. श्रीमती छवि सिंह, गाजीपुर (उ० प्र०)
१२६. विवेकानन्द युवा महामंडल, इन्दौर (म० प्र०)
१२७. श्री आनन्द यश चोपड़ा, नगाँग (अरुणाचल प्रदेश)
१२८. सुश्री सेजल क० मन्डलीय, जूनागढ़ (गुजरात)
१३०. श्री विजय कुमार रामसेवक गुप्ता, नागपुर
१३१. श्री जी. के. दीक्षित, वरोदा (गुजरात)
१३२. श्री सत्य प्रकाश लाल, वाराणसी (उ. प्र.)
१३३. श्री पूनम चन्द्र जैन—लुमडिंग (आसाम)
१३४. श्री राम आसरा वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
१३५. नार्थ कछार टिम्बर प्रोडक्ट्स—मंडेरदिशा (आ०)
१३६. श्री ओम प्रकाश अग्रवाल— लंका (आसाम)
१३७. श्री महेश गुरुवारा लुमडिंग (आसाम)
१३८. श्री भोलानाथ उपाध्याय—लुमडिंग (आसाम)
१३९. श्री अमुभाई पटेल— बड़ोदा (गुजरात)
१४०. श्री रामभगत खेमका—मद्रास
१४१. श्री रूपाराम -जोधपुर (राजस्थान)
१४२. महावीर बाल वाचनालय—चन्दायल नगर (राज०)
१४३. श्री कृष्ण मलहोत्रा—नई दिल्ली
१४४. श्री गुलशन चावला—दिल्ली
१४५. श्री आर० के० ग्रोवर— नई दिल्ली
१४६. श्री राकेश रेलहन— नई दिल्ली
१४७. श्री जयप्रकाश सिंह—कलकत्ता
१४८. श्री गंगाधर मिश्र —एन० सी० हिल्स
१४९. श्री बी० बी० शेरपा—लुमडिंग (आसाम)
१५०. श्री शंकर लाल अगरवाल —नगाँव (आसाम)
१५१. श्री रामगोपाल खेमका— कलकत्ता
१५२. श्रीमती शान्ति देवी—इन्दौर (म० प्र०)
१५३. श्री जगदीश बिहारी—जयपुर (राजस्थान)
१५४. डॉ० गोविन्द शर्मा—काठमांडू (नेपाल)
१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. [illegible] स. पी. त्रिवेदी—राजकोट (गुजरात)
१५[illegible]. श्र[illegible] गिरिजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५८. श्री अशोक कौशिक—मालवीय नगर, नयी दिल्ली
१५९. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)

इस अंक में

			पृष्ठ
१.	श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२.	माँ है, मैं हूँ (भजन)		२
३	सेवानिवृत्ति — जीवनाकांक्षा —	स्वामी आत्मानन्द	३
४.	दास्य भक्ति	प्रा० चन्द्रकान्त चौधरी	१६
५.	देव लोक	स्वामी अपूर्वानन्द	१९
६.	सिस्टर निवेदिता	सुश्री जसवीर कौर आहूजा	२३
७.	सर्वधर्म समभाव के उद्गाता – स्वामी विवेकानन्द (युवमंच)	स्मृति सुमन	२६
८.	मुक्तिदाता हैं शिव	महेन्द्र कुमार	२९
९.	शिव का वरदान	प्रेमशीला	३१

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिका

वर्ष—१४ फरवरी—१९९५ अंक—२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक

शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-४२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	५० रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएं एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

एक किस्म की भक्ति है, जिसका नाम है वैधी भक्ति। इतना जप करना होगा, इतने उपवास रखने होंगे, इतनी तीर्थयात्रा करनी होगी, इतने उपचारों से पूजा करनी होगी, इतने बलिदान देने होंगे—यह सब वैधी भक्ति है। यह सब करते-करते धीरे-धीरे रागाभक्ति आती है। जब तक यह रागाभक्ति नहीं आती, तब तक ईश्वरलाभ नहीं होता। ईश्वर पर प्रेम होना चाहिए। जब संसार बुद्धि पूरी तरह निकल जाएगी, ईश्वर पर सोलहों आने मन आ जाएगा, तभी उनको पा सकोगे।

(२)

यद्यपि अद्वैतज्ञान ही सर्वोच्च ज्ञान है, तथापि साधक को शुरू में उपास्य-उपासक भाव ("ईश्वर उपास्य हैं और मैं उनका उपासक हूँ" यह भाव) लेकर ही साधना करनी चाहिए। इससे सरलता से ज्ञानलाभ है।

(३)

बच्चे का स्वभाव ही है अपने को कीचड़-मिट्टी में सान लेना, पर माँ उसे गन्दा नहीं रहने देती, नहला-धुलाकर साफ कर देती है। इसी तरह मनुष्य का स्वभाव ही है पाप करना, परन्तु वह कितना भी पाप क्यों न करे, भगवान उसके उद्धार का उपाय कर ही देते हैं।

(४)

हवा बहने लगे तो पंखे की जरूरत नहीं रह जाती। ईश्वर की कृपा हो जाय तो साधन भजन की आवश्यकता नहीं रहती।

माँ है, मैं हूँ

(मूल-बंगला; बाउल-एकताल)

मा आछेन आर आमि आछि, भावना कि आधे आमार।
मायेर हाते खाइ परि, मा नियेछेन आमार भार॥

संसार पाके घोर विपाके जखोन देखि अन्धकार।
(सेई) घोर आँधारे माँ आमारे माभैः शुनाय बारे बार॥

(एसे) छय जनाते एकइ साथे पथ भोलाय जे कतो बार।
(सेई) विपद होते धरे हाते मा जे करिछेन उद्धार॥

(एतो) भूले ओ थाकि तबुओ देखि भूले ना मा एकटि बार।
(एमन) स्नेहेर आधार के आछे आर मा जे आमार आमि मार॥

भावानुवाद (समाज-कहरबा)

माँ है, मैं हूँ, फिर तो मुझको चिन्ता कैसी अबकी बार।
माँ के हाथों खाता-पीता, माँ ने लिया मेरा भार॥

जग माया के घोर क्षणों में जब भी देखूँ अन्धकार।
माँ उस घन तम में है कहती "डर मत" "डर मत" बारम्बार॥

षड्रिपु आकर हमला करते पथ भरमाते कितनी बार।
हाथ पकड़कर तब माँ करती, संकट से मेरा उद्धार॥

भले रहूँ भूला मैं माँ को, माँ न भूलती एकहु बार।
मैं माँ का हूँ, माँ मेरी है, उसे छोड़ क्या स्नेहाधार॥

सेवानिवृत्ति-जीवनाकांक्षा

—स्वामी आत्मानन्द

अब इस कार्यक्रम के लिए मुझे यहाँ आमंत्रित किया गया तो मुझे विशेष हर्ष हुआ, खासकर इसकी नवीनता को लेकर। क्योंकि यह एक प्रकार की नयी सूझ है—एक नयी प्रकार का चिन्तन है जो आपके सामने रखा जा रहा है। दूसरी ओर मुझे इस बात का खेद भी था कि कार्यक्रम को मैं स्वीकार नहीं कर पा रहा था, क्योंकि इन्हीं दिनों उप-राष्ट्रपतिजी का कार्यक्रम नारायणपुर में प्रस्तावित था। अभी आपने नारायणपुर की बात सुनी जहाँ हम लोग काम कर रहे हैं। बस्तर जिले का वनांचल जिसे अबूझमाड़ कहते हैं, ३९११४ वर्ग किलोमीटर का जिला है जो क्षेत्रफल में केरल से भी बड़ा है। ऐसे बस्तर जिले में अबूझमाड़ का यह क्षेत्र चार हजार वर्ग किलोमीटर का है जो अभी तक किसी खाते में नहीं है। न तो राजस्व के खाते में और न ही वन के। यह किसी की भूमि नहीं है—'सबै भूमि गोपाल की' यह भी कह सकते हैं। किसी के नाम पर कोई पट्टा नहीं कि कितनी जमीन है अमुक व्यक्ति की। यहाँ कोई Survey नहीं हुआ है। यहाँ के लोग अबूझमाड़िया कहलाते हैं। वे केवल आदिमजाति के ही नहीं बल्कि विशेषत: आदिमप्रजाति के हैं, जिन्हें हम अंग्रेजी में aborigine कहते हैं। यहाँ नारायणपुर जो तहसील है उसे हमने base camp (आधार शिविर) बनाया और भिन्न-भिन्न प्रकार की गतिविधियाँ शुरू की। आपका ये जो कार्यक्रम बना है, हमारे अस्पताल का उद्घाटन करने के लिए उप-राष्ट्रपतिजी की तिथियाँ इन्हीं दिनों निश्चित की थी। यही कारण था कि मैं यहाँ आना स्वीकार नहीं कर पाया था। अब तिथियों में परिवर्तन हुआ है और ऐसा मालूम पड़ा है कि उप-राष्ट्रपतिजी अब मई महीने के प्रथम सप्ताह में आयेंगे और इस तरह आपके इस कार्यक्रम में आने की सुविधा बन गयी। मुझे बहुत खुशी है कि यहाँभिन्न-भिन्न प्रकार के व्याख्यान हुए हैं तथा जो लोग अधिकारी व्यक्ति हैं उनके द्वारा यहाँ पर विचार व्यक्त किये गये। मैं यही सुन रहा था कि प्रत्येक क्षेत्र के अधिकारी विद्वान ने यह बताया कि हम भावी जीवन, जिसे हम Retirement (अवकाश) का जीवन कहते हैं; उस जीवन को किस प्रकार अच्छी तरह बिता सकें। जैसे कि अगर पास में पैसा है तो उसका नियोजन कैसे करें? Income tax (आयकर) से हमें छूट कैसे मिलेगी? हमें अपने धन का विशेष लाभ कैसे मिल सकता है, और जो लोग किसी बात में विशेष रुचि रखते हैं उस रुचि को वे कैसे आगे बढ़ा सकते हैं, आदि आदि। और मुझसे कहा गया कि मैं अध्यात्म की दृष्टि से इस सेवानिवृत्ति की तैयारी के संबंध में कुछ कहूँ। यह बहुत ही समीचीन है क्योंकि मेरा क्षेत्र तो अध्यात्म का रहा है।

ईशावास्योपनिषद् के जो प्रथम दो मंत्र हैं उनमें यह रहस्य भरा हुआ है कि हम सौ साल तक कैसे कर्मठ जीवन बिता सकते हैं। उपनिषदों का जो क्रम है उसमें ईशावास्योपनिषद् का पहला स्थान आता है। अद्वैतपाद आचार्य शंकर ने दस

ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी, रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा अप्रैल १२, १९८२ को सेवानिवृत्त होने जा रहे भारतीय स्टेट बैंक के कर्मचारियों के लिए भोपाल में दिया गया भाषण।

उपनिषदों पर भाष्य लिखे हैं और प्रथम उपनिषद् यह ईशावास्योपनिषद् है जहाँ से अपने भाष्य को रचना प्रारम्भ करते हैं। जैसा कि मैंने अभी कहा, उसके प्रथम दो सूत्रों में जीने का सूत्र निहित है। पहला सूत्र कहता है—

ॐ ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥

इसका अर्थ यह है : 'यह जो कुछ भी दिखायी देता है वह ईश से (ईश्वर से) ढका हुआ है।' यह जो 'ईश' शब्द है वह ईशम् धातु से उत्पन्न है जिसका तात्पर्य होता है शासन करना।' एक ऐसी सत्ता है जो सब पर शासन करती है। वैज्ञानिक कितना भी निरपेक्षवादी बनने की चेष्टा क्यों न करें, क्यों न कहें कि मैं ईश्वर में विश्वास नहीं करता हूँ फिर भी वह एक ऐसी सत्ता में तो विश्वास करता है जो सत्ता अति-बौद्धिक है। जिसे आइन्स्टीन ने Super Intelligent Power कह कर पुकारा है। एक बहुत छोटी-सी पुस्तक है लिंकन बार्नेट की लिखी हुई। वे विज्ञान पर अपने विचार लिखा करते थे। इस छोटी-सी पुस्तक नाम है "The Univers and Dr. Einstein. डॉ० आइन्स्टीन ने जो खोज की—भौतिकी को उनकी भी देन रही है, उन सब का सुन्दर वर्णन बार्नेट ने दिया है। वहीं पर एक बड़ा ही सुन्दर प्रश्न लिंकन बार्नेट ने उठाया : Does Einstein belive in God? आइन्स्टीन उस समय जीवित थे जब यह पुस्तक लिखी गयी; और उनका उत्तर स्वयं बार्नेट ही यह कहकर देते हैं कि "Yes, Einstein believes in God." What is his definition of God?—ईश्वर की परिभाषा आइन्स्टीन के अनुसार क्या है? तो वहाँ पर ईश्वर की बड़ी सुन्दर परिभाषा आइन्स्टीन ने दी है। और उन्होंने यह कहा है कि 'जब मैं इस संसार की ओर देखता हूँ, नक्षत्रों को देखता हूँ—तारों की दुनिया को देखता हूँ तो ऐसा लगता है कि इनके पीछे एक शक्ति है जो नियामक है—नियंत्रित करने वाली, है और ऐसी जो भी शक्ति है वह जड़ नहीं है।' एक नियामक शक्ति वह भी हो सकती है जो जड़ है। पर यह एक ऐसी नियामक शक्ति है जिसमें चेतना है, बौद्धिकता है। और इसलिए वे ये कहते हैं कि 'यदि मुझसे कोई पूछता है कि क्या तुम ईश्वर में विश्वास करते हो? मैं कहता हूँ, 'हाँ'। तुम्हारी ईश्वर की धारणा क्या है—जब वह पूछता है तब मैं उसके उत्तर में कहता हूँ कि "एक अदृश्य (unseen) परम बौद्धिक सत्ता इस विश्व में दिखायी देती है, जो सबका नियंत्रण कर रही है। ग्रह और नक्षत्र अपनी रेखा पर चला करते हैं—सूर्य अपनी परिधि पर घूमता रहता है। कहीं पर किसी प्रकार का भी व्यतिक्रम नहीं होता है। और ऐसा लगता है कि बहुत ही नियोजित रूप से सारा का सारा धरा हुआ है। जब हम विज्ञान की गहराई में जाते हैं, अधिकाधिक गहराई में उतरने पर ऐसा लगता है कि यह जड़ का खेल नहीं है। यह तो चैतन्य का खेल है। यह arbitrary निरंकुश एवं मनमाना) भी नहीं, इस खेल के पीछे भी एक नियम की खोज कर पाता है। यदि arbitrarily (मनमाने ढंग से सब कुछ हुआ होता तब तो दुनिया में नियम नाम की चीज ही नहीं होती। घटनाएँ बिना किसी नियम के घटतीं। पर हम जिसे दुर्घटना कहते हैं उसके पीछे भी नियम है। ऐसी विलक्षण बात आइन्स्टीन कहते हैं। जिसे हम दुर्घटना कहते हैं उनका तात्पर्य यह होता है कि दुर्घटना वह है जिसके पीछे नियम न हो। पर वस्तुतः आइन्स्टीन का कहना है कि दुर्घटना के पीछे भी नियम है। और यदि हम उस नियम को जान लें तो फिर दुर्घटना नहीं होगी—हम ऐसी दुर्घटना से बचने

रक्षा कर सकें ? । इसलिए वे दुर्घटना को भी नियम के अंतर्गत ही रखते हैं, तो संसार में सब कुछ नियम के द्वारा ही नियंत्रित है ।

अब यह तो हम देखते हैं कि मनुष्य की बुद्धि कितनी ऊपर जा सकती है । जिस समय मनुष्य पहली बार अंतरिक्ष को भेद करके चन्द्रमा पर उतरा, क्या अद्भुत एवं विलक्षण अनुभव था – विज्ञान के क्षेत्र में नियमों को जानकर नियमों पर हावी होना । मनुष्य जब तक नियम को नहीं जानता, नियम उसे चलाते हैं । और जब मनुष्य नियम को जान लेता है तो वह नियम को चलाने लगता है । जब तक मैं किसी मशीन के नियम को नहीं जानता तब तक मशीन मुझे चलाती है—मशीन अपनी मर्जी से चले या अपनी मर्जी से बन्द हो जाय । पर यदि मैं मशीन के नियम को जानता हूँ और अगर मशीन बन्द हो जाएगी तो मैं मशीन फिर से चला लूँगा, भले ही मशीन चलना स्वीकार करे या न करे । तो फिर से मैं अपनी बात को दुहरा दूँ : "जब तक हम नियम को नहीं जानते, नियम हमें चलाते हैं । पर जब हम नियम को जान लेते हैं तब नियमों को हम चलाते हैं ।" जब तक मैंने गुरुत्वाकर्षण के नियम को जान लिया तो उस पर मैं हावी हो गया और मैं आकाश में उड़ने लगा । अंतरिक्ष के नियमों को जान लिया तो मैंने अंतरिक्ष का भेदन कर लिया और चंद्रमा पर जो नियम कार्यरत हैं, उनको जान लिया तो चन्द्रमा की सतह पर जाकर उतर गया । अतः नियमों को जान लेने से मनुष्य उतना ही शक्तिशाली बन जाता है । तो आइन्स्टीन कहते हैं कि यह जो सारा संसार है, विश्व रचना है, इसे देखने से ऐसा लगता है कि इसमें एक नियम अनुस्यूत (विद्यमान) है— एक बौद्धिक सत्ता है और इस बौद्धिक सत्ता को ही मैं ईश्वर के नाम से पुकारता हूँ । हम कह रहे थे कि ईशावास्योपनिषद् का पहला सूत्र है : "ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम् ।" इसका अर्थ मैं बता रहा था कि इस ईश के द्वारा ये सारा का सारा विश्व ढका हुआ है यानि ईश के द्वारा — ईशन करनेवाले तत्त्व के द्वारा — उस सत्ता के द्वारा जो सबका नियमन करती है, यह सारा विश्व ढका हुआ है । यह हो गया ईश आवास्य (ईशावास्य) । 'ईशा आवास्य' और ईश आवास्य, दो प्रकार से हम इसकी व्युत्पत्ति कर सकते हैं ।

एक तृतीय विभक्ति के अनुसार तथा दूसरा षष्टी विभक्ति के अनुसार । तो तृतीय विभक्ति के द्वारा यह मतलब होता है । "यह जो सारा संसार है, यह ईश्वर से ढका हुआ है ।" और षष्टी विभक्ति के अनुसार यह कहा जाता है : "इस संसार में जो कुछ भी दिखायी देता है, उसमें भगवान बैठे हैं — ईश का वासस्थान है ।" जैसे मेरा वासस्थान मेरा कमरा होता है । तो उस ईश का वासस्थान है, जहाँ भी हमारी नजर पड़े वह सब । 'जगत्यां जगत् यत् किञ्च' इस संसार में, गतिशील संसार में जो कुछ दिखायी देता है वह या तो ईश्वर का बैठकखाना है, वासस्थान है या फिर उन सबको तुम ईश्वर से ढक लो और ढक करके देखो । यह पहले सूत्र के प्रथम भाग का अर्थ है और दूसरे भाग का अर्थ है : 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा'—संसार का भोग करो उस त्याग के द्वारा । 'मा गृधः' (लालच मत करो) । गृधः जिसे अंग्रेजी में Greed कहते हैं । एक ही धातु है गृध' (लालच करना) तो कहते हैं : मा गृधः— लालच मत करो । कस्य स्विद् धनम् इस जीवन में धन रखा किसका है । बड़े सुन्दर ढंग से यह उपनिषद् शुरू हुआ है । ऐसा लगता है कि जो व्यक्ति बैठे थे सामने, सुनने के लिए, उन व्यक्तियों के भीतर में लोभ की भावना अधिक थी । और

उस लोभ की वृत्ति को दूर करने की दृष्टि से हो विचार व्यक्त किया जा रहा हो। एक-एक उपनिषद् का एक-एक तरीका है उन सत्य को हमारे सामने रखने का। ईशावास्योपनिषद् का तरीका है—"जहां लालच की वृत्ति—लोभ की वृत्ति अधिक दिखायी देती है, उस पर अंकुश लगाते हुए जीवन को हम किस प्रकार ठीक तरह से चला सकते हैं"—इसका विवेचन है। और दूसरे सूत्र में क्या कहा है ?

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतम् समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे"॥

कहते हैं कि "कुर्वन्नेवेह कर्माणि—इस संसार में कर्म करते हुए हो'—यह जो एवं' शब्द है, कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने इच्छा है। यहाँ पर कहते हैं कि 'तेरे लिए और दूसरा कोई तरीका नहीं है कि तू कर्म में बिना लिप्त हुए इस संसार में रह सके।' केवल यही तरीका है कि तू कर्मकर और कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा कर।' 'तेरे जीवन के ये जो सौ वर्ष हैं कर्मठता से भरे रहें।' यही संदेश है ईशावास्योपनिषद् का।

अब इन दो मंत्रों का जो मर्म है उसे आज के लिए रखे गये चिन्तन के विषय के साथ जब हम जोड़ते हैं तो एक अभूतपूर्व अर्थ हमारे सामने आता है। जब मनुष्य सेवा निवृत्त होने लगता है तो उसके जीवन में एक प्रकार की हताशा आती है। उस मनुष्य में कर्मठता तो बनी हुई है। अभी वह अट्ठावन साल तक काम करता रहा, उसमें क्षमता है, उसके भीतर कर्म करने की शक्ति है, ताकत है। और वह सेवा-निवृत्त हो जाता है तो उसे ऐसा लगता है कि क्या मेरी क्षमता ही विलुप्त हो गयी ? मेरे अन्दर काम करने की जो मानसिकता बनी हुई थी क्या मानसिकता ही खत्म हो गयी ? उसके मन में ऐसे विचार आते हैं तथा सेवानिवृत्त होने से पहले भी एक प्रकार से हतोत्साह का भाव दिखायी देता है कि बाद में मैं क्या करूंगा। मैं क्या किसी भी प्रकार समाज के लिए उपयोगी नहीं बनूंगा'—मनुष्य के मन को ये प्रश्न सालते हैं और यह तो जीवन का सत्य है कि जब मैं परिवार के लिए उपयोगी नहीं रहता हूं तो परिवार वालों को भी मेरी कोई चिन्ता नहीं रही। यही ध्रुव-सत्य है और इस सत्य में किसी प्रकार की भी शंका नहीं हो सकती। हां, तो मनुष्य जिस समय सेवा-निवृत्त होने लगता है तो उसके मन में यही विचार उमड़ने लगते हैं कि जो मैं उपयोगी बना हुआ था क्या अब मैं उपयोगी नहीं बना रहूँगा ? क्या मैं समाज के लिए हितकर कार्य नहीं कर सकता हूं ?—यह प्रश्न उठता है। इस प्रश्न को हम Subjective (आत्मगत) कहेंगे। यहाँ पर हम अपनी ओर से ऐसा सोचते हैं और यह एक पक्ष है। और जिसे हम Objective (बाह्यगत) कहेंगे, वह बाहर की तरफ की दृष्टि है। इसमें बाहर का व्यक्ति कहता है कि यह तो अब रिटायर्ड आदमी हैं—अब ये सेवा-निवृत्त हैं। जब कोई हमारा परिचय देता है कि ये सेवा-निवृत्त हैं तो भले ही हम यूं ही झूठी मुस्कान अपने होठों पर लाकर बात को सह लें पर भीतर में कहीं कुछ चुभता है। जब कोई मुझे सेवा-निवृत्त कहता है तो लगता है कि जैसे मैं किसी काम का नहीं रहा हूं। ऐसा ही मन में प्रश्न उठता है। यहाँ आपके सामने जो दो सूत्र रखे गये इन सूत्रों में यह कहा गया है कि तुम सौ वर्ष के जीवन तक उतने ही उपयोगी बने रह सकते हो जितने उपयोगी तुम अपने सेवा-काल में थे। उपनिषद् के ये दोनों सूत्र उपयोगी बने रहने के सूत्र हैं जिससे हमारे भीतर चेतना आती है, शक्ति आती है।

मैं दो उदाहरण देना चाहूँगा। नाम मैं नहीं लेना चाहता पर कुछ लोग नाम से परिचित होंगे। नाम सुनकर शायद आपको अच्छा लगे अत: एक नाम तो जरूर ले लूँगा। जैसे एक सज्जन जो हमारे मित्र हैं, अवकाश प्राप्त करते हैं। Addl. Director, Agriculture अतिरिक्त निदेशक, कृषि) के रूप में। चूँकि वे टेक्निकल साइड के थे, इसलिए वे Director (निदेशक) नहीं बने (IAS Cadre के लोगों को ही Director बनाया जाता है) पर addl. Director के पद पर रहकर उन्होंने बहुत काम किया। उसके बाद वे छ: साल तक अवकाश में रहे। उनकी शक्ति क्षीण होती गयी। उन्हें ऐसा लगा कि क्या मेरे लिए कुछ भी काम नहीं है। सरकारी सेवाओं से जब हम अवकाश लेते हैं तो गाड़ी निकल जाती — घर से टेलिफोन निकल जाता है—चपरासी चला हो जाता है और मनुष्य को ऐसा लगता है कि आपत्ति के जितने भी पहाड़ थे, एक साथ टूट पड़े। जब तक उनमें क्षमता थी, गाड़ी भी थी, पास में कितने नौकर चाकर थे, लोग कितने नजदीक थे, मानों वहाँ जीहुजूरी बजाने के लिए लोगों का तांता लगा रहता था। जो कभी भी साग-भाजी खरीदने बाजार नहीं गये अब तो सब काम शायद उन्हें ही करना पड़ रहा है। इस तरह एक प्रकार का मानसिक बोझ उनके सिर पर आता है और उस बोझ के कारण हमने देखा कि अपने जीवन में कैसे धीरे-धीरे वे arthritis (गठिया) के शिकार हुए। शरीर में पीड़ा रहने लगी और वे अपंगता का बोध करने लगे। मैंने उन्हें समझाया कि आप इस प्रकार अपने बारे में क्यों सोचते हैं। "हम आपकी सेवा लेना चाहेंगे। आप आइए और हमारे साथ काम कीजिए। तब अबुझमाड़ का नाम लिया और कहा कि आप तो कृषि में दक्ष रहे हैं। आप ऐसा कीजिए कि आप वहाँ हमारा experimentation (प्रयोग) तथा demonstration (प्रदर्शन) का जो कार्य है, आप इसे अपने Charge (देखरेख) में लेकर यहाँ काम कीजिए, इसे बनाइए तथा हमारी सहायता कीजिए।' और जब से वे इस कार्य में लगे अभी एक साल हुआ है। आज उनकी चाल देखकर हम तो दंग रह जाते हैं। जो कभी लंगड़ाते हुए चलते थे, आज वह लंगड़ाहट जाने कहाँ चली गयी? उनके भीतर का आत्मविश्वास इतना प्रबल हो गया। उन्हें लगता है कि वे आज समाज के लिए उपकारी कार्य कर रहे हैं। अभी तो वे ऐसा कहते हैं कि 'महाराज' मैं अपनी तैंतीस साल की नौकरी में समाज के लिए जितना हितकर कार्य नहीं कर सका, आज एक साल में यहाँ जो मैंने किया वह बहुत कार्य है। यह एक बहुत बड़ा पक्ष है। इस को आप अपने ध्यान में अवश्य रखें।

एक तो काम हम अपने लिए करते हैं, भले ही वह सरकारी नौकरी हो, कारखाने की नौकरी हो या अन्य कोई भी। हम इस नौकरी में खपकर अपनी पूरी ताकत देते हैं। परन्तु भीतर ही भीतर यह भाव तो बना ही रहता है कि मैं अपने लिए ही तो कर रहा हूँ। आप पूरी ताकत देंगे, पूरी ईमानदारी, पूरी निष्ठा, पूरी लगन से संस्था को बढ़ाने की चेष्टा करेंगे। आपके जीवन में एक fulfilment (परितोष) का भाव रहेगा कि मैंने पूरी योग्यता के साथ इस संस्था में काम किया है। यह उसका एक पक्ष है। पर इस पक्ष के साथ भीतर में एक यह भी रहता है कि मैंने यह केवल अपने परिवार के लिए ही तो किया। अपने लिए ही तो पैसा कमाया। मैंने समाज को भला क्या दिया है? पर दूसरा आकर हमें समझाने की कोशिश करे", अरे सुनो! संस्था में तुमने कितना काम किया वह तो एक प्रकार से राष्ट्र की ही सेवा है। तुमने इतना production

(उत्पादन) दिया, कई बार तुमने Production Records (उत्पादन में कीर्तिमान) भी कायम किये। तो तुम इतने हतोत्साह क्यों होते हो?" वह भले ही हमें दिलासा देने की चेष्टा करे और यह दिलासा यथार्थ भी हो पर मेरे मन में कहीं पर एक कसक बनी रहती है कि मैं केवल अपने परिवार के लिए ही तो काम आया हूं, समाज के काम तो नहीं आया हूं। मैं केवल अपने स्वार्थ के लिए ही तो जीवित रहा हूं—यह भावना बनी रहती है। अगर यह व्यक्ति सेवा के काम में देखेंगे कि व्यक्ति को शक्तिशाली बनने में अधिक समय नहीं लगता है। यह जो किसी काम के पीछे नि:स्वार्थ भावना है, उसमें इतनी ताकत भरी रहती है कि जब हम वह काम करते हैं तो मालूम होता है कि हमें कहीं बाहर से ऊर्जा प्राप्त होती रहती है। तो यह एक पक्ष है जिसको मैं चाहूंगा कि अवकाश प्राप्त करते वक्त आप ध्यान में जरूर रखें।

कहीं पर बाध्यतायें भी होती हैं। जब हम एकदम से सेवा-निवृत्त होते हैं तो अर्थ (धन) की दृष्टि से भी कमी आती है। हम चाहते हैं कि resources (साधन) को और कहीं से भी लाकर इकट्ठा करें। परिवार की जिम्मेदारियां भी बनी रहती हैं जिन्हें हम सेवा-निवृत्ति के वक्त पूरा नहीं कर पाते हैं और हम उन्हें पूरा निभाने की चेष्टा करते हैं। बाहर अपने मन में अनुकूल काम मिल जाता है तो हम काम भी कर लेते हैं तथा अर्थोपार्जन करने की चेष्टा करते हैं तथा अपने अभाव को मिटाने का प्रयास करते हैं। यह एक पक्ष है। अगर दूसरा पक्ष इसके साथ जुड़ जाय, वह यह कि आप किसी संस्था के साथ युक्त हो जाइए, जो भी संस्था आप को अच्छी लगे। वहां पर जो आपकी नि:स्वार्थ सेवा रहेगी वह आपको fulfilment (परितोष) प्रदान करेगी। मनुष्य केवल अर्थ ही तो नहीं चाहता है। वह जीवन के प्रयोजन की सिद्धि चाहता है—संतोष चाहता है—मनमें तुष्टि चाहता है। उसे ऐसा लगता है कि "मैं केवल अपने लिए ही नहीं बल्कि दूसरों के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो रहा हूं"—वह इस भावना की संतुष्टि चाहता है। ऐसी संतुष्टि तो तभी आ सकती है जब हम 'वानप्रस्थ' अवस्था में हों। आप जानते हैं कि हमने चार आश्रमों में जीवन को विभाजित किया था। उस समय के ऋषि-मुनियों ने बहुत सोच-विचार कर ऐसा किया था। यह विभाजन arbitrary (निरंकुश) नहीं था। ऐसा नहीं कि सौ वर्ष को हमने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास में पच्चीस-पच्चीस वर्ष करके बराबर विभाजित कर दिया। वेदों में जो विभाजन किया गया है, उसे तीन भागों में विभाजित किया गया है। आश्रम चार माने गये हैं पर उसका जो विभाजन है वह तीन में ही है। एक तो चौबीस वर्ष का प्रथम काल है जिसे उन्होंने ब्रह्मचर्य आश्रम कहा। यह विद्याभ्यास का काल रहा। मनुष्य गुरु के पास जाता था और वहां चौबीस वर्ष तक रहकर विद्याध्ययन करता था। दूसरा काल है अड़तालीस वर्ष का और ये जो दोनों पूर्ण होते हैं तो बहत्तर साल के हो गये। तीसरा काल चवालिस वर्ष का होता है। और इस तरह मनुष्य की औसत आयु एक सौ सोलह साल मानी गयी। औसत कहने का अर्थ है कि परम् आयु मानी गयी। "जीवेम् शरद: शतम्"—हम सौ वर्ष तक जियें। "शतायु: वै पुरुष:"—मनुष्य सौ वर्ष का होता है, आदि। जब वृद्ध लोग हमें आशीर्वाद दिया करते थे तो कहते थे कि तुम सौ बरस तक जियो। तो मानो कि सौ वर्ष का ये जो कार्यक्रम है, इसे हमने आयु सीमा मानी थी। वेदों में ऐसा विचार था कि सैकड़ा यानि जो आयु का सैकड़ा है उसे एक सौ

सोलह वर्ष माना गया। अभी भी गाँवों में जब हम जाते हैं और कोई वस्तु खरीदते हैं तो ऐसी पद्धति है कि ऐसे हमने कहा कि "एक सौ आम दे दो" तो वह पाँच कोड़ी (बीस को कोड़ी कहते हैं) आम देगा तथा एक और कोड़ी ऊपर से पुरानी भी देगा। मानो एक सौ बीस का सैंकड़ा माना जा रहा था। जैसे आप रतल कहेंगे तो रतल का सैंकड़ा एक सौ बारह का माना जाता है। जैसे नाम-जप का सैंकड़ा वह एक सौ आठ का माना जाता है। अगर आप नाम-जप सौ बार कर तो हम सौ बार नहीं करते बल्कि एक सौ आठ बार करते हैं। इसी तरह आयु का सैंकड़ा है एक सौ सोलह साल का। मनुष्य की आयु यानि पूर्णायु एक सौ सोलह साल का मानी गया। चौबीस साल तो बीते विद्याध्ययन में। बाद में शादी करके गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हुए और अड़तालीस साल तक वहाँ रहे। इसका मतलब कि बहत्तर साल की आयु हो गयी। और इसके पश्चात् कहा गया कि 'अब तुम जाओ और इस संसार से धीरे-धीरे अपना लगाव कम करने की चेष्टा करो। यह बड़ी ही मनोवैज्ञानिक पद्धति थी। शेष चवालिस वर्ष का काल अभी जो भी बाकी है उसे वानप्रस्थ जीवन के रूप में बिताओ। और जिसमें क्षमता है संन्यास लेने की यानि जो अपने भीतर में अनुभव करता है कि मैं पत्नी से विमुख रहकर संन्यासी का जीवन जी सकता हूँ तो अलग चले जाओ और ध्यानधारणा में अपना जीवन बिताओ, जीवन का जो लक्ष्य है इसे पाने का चिन्तन करो। क्योंकि वाणप्रस्थ आश्रम में पत्नी साथ रह सकती है पर जो संन्यास का आश्रम है उसमें पत्नी साथ नहीं रहती।

जब यह प्रणाली हमारे सामने रखी गयी थी, मानो हमें पहले से बताया गया था। शिक्षा में यह हमें प्राप्त हुआ था—माँ के दूध के साथ हमें यह शिक्षा मिली थी—संस्कार मिला था कि हमारे जीवन का बँटवारा इस प्रकार से होना चाहिए। तो अचानक कहीं कोई shock (आघात) की बात नहीं—मानो हमें तैयार कर दिया गया था मनोवैज्ञानिक रूप से। और हम इसे सहने के लिए—ऐसा जीवन जीने के लिए तैयार थे। तो वानप्रस्थ जीवन में ऐसा लगा था कि हमारी सारी जिम्मेदारियाँ पूर्ण हो गयीं और हम धीरे-धीरे विरक्ति का अभ्यास कर रहे हैं—आसक्ति को काटने की चेष्टा कर रहे हैं। वानप्रस्थ आश्रम में जब मनुष्य जाता था तो निःस्वार्थ कामों में अपने को लगा देता था। जब वह गृहस्थाश्रम में था उस समय भी यथाशक्ति अपने को निःस्वार्थ कामों में लगाता ही था। पर वाणप्रस्थी होने का मतलब यह था कि पूरा समय वह निःस्वार्थ कार्यों में दे रहा है। जब अपने लिए किसी प्रकार का प्रयोजन नहीं है—वह स्वार्थनिहित काम में अपना समय नहीं बिता रहा है। ऐसी उस समय की धारणा थी। तो मैं यह कहना चाहता था कि सेवा-निवृत्ति की जो तैयारी है इसमें अगर हमारे मानस में, अगर वाणप्रस्थी की ऐसी भावना रही तो यह हमारे मानसिक shock (आघात) को बहुत कुछ कम कर सकती है। और धीरे-धीरे समायोजन पैदा कर सकती है—adjustment पैदा कर सकती है। और इस adjustment (समायोजन) के बल पर हम अपने जीवन से हताशा को दूर कर सकते हैं।

एक उदाहरण मैंने Addl. Director (अतिरिक्त निदेशक) का दिया था। दूसरा उदाहरण है एक Chief Engr. Irrigation (मुख्य अभियन्ता सिंचाई) का। ये महोदय यहाँ भोपाल में retire हुए। उन्होंने पहले तो चाहा कि retire होने के बाद हम कहीं चले जाएँ—हिमालय में ध्यान करने के लिए चले जाएं और वहाँ पर हम एकान्तवास करें। मैंने उनसे अनुरोध किया कि

एक बार आप नारायणपुर आ करके देख लीजिए। यहाँ पर हमारा एक बड़ा कर्मस्थल है। आपने एक कर्मठता का जीवन व्यतीत किया है और हिमालय में जो आप जाना चाहते हैं, वहाँ पर समायोजन (adjustment) शायद हो पाये या न हो पाये। क्योंकि आदमी जब बहुत कर्मठ होता है और एकदम से कर्मठता का अभाव हो जाना भी balance को खराब कर देता है—संतुलन को बिगाड़ देता है। हमने कहा कि "आप ऐसी जगह आ जाइए और चेष्टा करके देखिए। नारायणपुर में भी आपको जंगल मिलेंगे—घोर जंगल मिलेंगे—गुफाएँ मिलेंगी और वहाँ पर आप ध्यान धारणा का अभ्यास कर सकते है। और बाकी समय में यदि आप चाहें तो सेवा का कर्म ले करके काम कर सकते हैं। आपका Involvement (जुड़ने) एवं fulfilment (परितोष) की अनुभूति होगी।" वे सज्जन आज दो साल से नारायणपुर में रहकर काम कर रहे है। जैसा कि हमने पहले कहा है, वे मध्यप्रदेश में chief Engineer रह चुके हैं। इन दो सालों में उन्होंने जो किया है—उनका जो योगदान रहा है वह बड़ा विलक्षण है। यह तो objective (बाह्यगत) पक्ष है। और उनका जो subjective (आत्मगत) पक्ष है कि उन्हें ऐसा लगता है कि जैसे उनका कायापलट हो गया है। पहले भीतर में ऐसा प्रतीत होता था कि अब तो मैं कुछ करने योग्य नहीं हूँ। वे कहा करते थे कि श्रीमान् इस उम्र में मैं क्या अपनी सेवायें दे सकता हूँ। पर वहाँ पर उनका काम देखने से ऐसा लगेगा कि चालीस साल का जवान भी चलने में या काम करने में उनकी बराबरी नहीं कर सकता। यही है usefulness जिसका मैंने पहले जिक्र किया था। उनको पहले लगता था मैं useful (उपयोगी) नहीं हूँ और यह भाव ही मेरे ऊपर वजन का काम करता है और मुझे सतत् दबाने को चेष्टा करता है। हम इस भाव से अपने को मुक्त कर सकते हैं। कैसे? You feel that you are very useful-you are useful to society-you are useful to your family (आप अनुभव करते हैं कि आप बहुत उपयोगी हैं—आप समाज के लिए उपयोगी हैं, आप अपने परिवार के लिए उपयोगी हैं।) कहीं पर भी आपको लगता है कि मैं useful (उपयोगी) नहीं हो रहा हूँ तो इस भावना को हटाने की आवश्यकता है। पर कैसे?—कर्म के द्वारा, कर्मठता के द्वारा, चाहे आप किसी प्रकार के काम में लगें। मान लीजिए, आपको पैसों की आवश्यकता है, आप उपार्जन करना चाहते हैं तो आप अवश्य उपार्जन कीजिए। इसमें कोई हानि नहीं है। पर मैं यह चाहूँगा कि यदि आप किसी ऐसे निःस्वार्थ कर्म के साथ अपने को युक्त कर सकते हैं तो आपके लिए वह निःस्वार्थ काम ऊर्जा (energy) का डायनमो बन जाएगा। आपको सतत् वह ताकत देता रहेगा। ऐसा लगेगा कि आप बहुत useful (उपयोगी) हैं। और यह स्वाभाविक है कि जब कोई आपकी प्रशंसा करेगा, देखिए भाई! आप तो बहुत काम करते हैं। जवान क्या आपसे होड़ ले सकें"—वह सुनने से ही कितनी energy आ जाती है—कितना जोश पैदा हो जाता है। मैं अपनी प्रशंसा सुनकर जोश में आ रहा हूँ, ऐसी बात नहीं है। जब मुझे ऐसा लगता है कि मैं समाज के लिए सचमुच हितकारी बन रहा हूँ—उपयोगी सिद्ध हो रहा हूँ, मैं सब तरह से अपनी सेवायें दे रहा हूँ जो सचमुच में समाज को चाहिए तो ऐसे समय में मेरे भीतर एक fountain (निर्भर), एक शक्ति का फुहारा फूटने लगता है।

तो मैं पहले कह रहा था कि ईशावास्योपनिषद् के जो सूत्र हैं ये सेवा-निवृत्ति की तयारी के लिए दो बढ़िया सूत्र तैयार करते हैं। एक बार

फिर मैं ऊपर में उल्लेख किए इन दो सूत्रों में जो बातें निहित हैं उन्हें आपके समक्ष रखना चाहूँगा, कहा गया है—

"भगवान से सारा संसार ढँक दो। इस विश्व को ईश्वर से ढँक करके देखो।"

पर यह जो पक्ष है वह बहुतों को ठीक से जमता नहीं है क्योंकि हमने इस दिशा में अभ्यास तो किया नहीं है। पहले से हमारी कोई तैयारी नहीं है--कोई साधन नहीं रही है—हमने इस प्रकार से ईश्वर को देखने की चेष्टा नहीं की है। पर आज जो वैज्ञानिक उपलब्धि है उसके बल पर हम उस सत्ता का चिन्तन अवश्य कर सकते हैं, जो सार्वभौम है, जो एक नियामक सत्ता की कल्पना है जो सारे संसार को चला रही है, नियंत्रित कर रही है और जिसमें किसी प्रकार का व्यतिक्रम नहीं है। यदि आज इस नियम में कोई व्यतिक्रम होता जो आज वैज्ञानिक उन नियमों को खोजने में समर्थ नहीं होते। यही बात मैं पहले भी कह चुका हूँ। मैंने पहले कहा था कि जब पहले दिन हम लोगों ने सुना कि मनुष्य चन्द्रमा के धरातल पर उतर गया तो अमेरिका ने अच्छी तरह उसकी पूर्व तैयारी की थी। अगर आपने वह दृश्य देखा है तो आपको लगा होगा कि वह बहुत ही मार्मिकता का दृश्य था। वहाँ पर उन्होंने बताया था कैसे आदमी जा रहा है—capsule (संपुट) से कैसे हट रहा है—कैसे यान से, प्रक्षेपास्त्र से capsule (संपुट) हट गया है और अंतरिक्ष में जा रहा है। अंतरिक्ष में जाकर कैसे चन्द्रमा के धरातल पर आ रहा है—वहाँ उतर रहा है और उस यान से दरवाजा खोलकर वह बाहर निकलता है तथा कैसे निकल कर चन्द्रमा के धरातल पर चलता है। यह सारा का सारा धरातल चित्र जब मनुष्य चन्द्र-तल पर उतरा नहीं था तभी हमें अमेरीका टी० वी० पर देखने का अवसर मिला था। यह घोषणा भी की गयी थी कि इतने घंटे, इतने मिनट और सेकण्ड में यह व्यक्ति वहाँ जाकर के चन्द्रमा के धरातल पर उतरेगा। क्या खब! यह मनुष्य कितना शक्तिशाली है। हमारे यहाँ यह कहा गया है कि मनुष्य ही ब्रह्म है'—यह मनुष्य ब्रह्म के समान ही अनन्त है'—यह जो जीव है वह ब्रह्म के समान ही ब्रह्म ही है और इसलिए ब्रह्म के समान ही अनन्त शक्तिधर है' इसका मानो प्रत्यक्षीकरण ही है कि एक व्यक्ति गणना करके अंतरीक्षयान के सम्बन्ध में बता सकता है कि कितना समय लगेगा उसे जाने में। और जब यथार्थ में उस यान को भेजा गया तो ठीक उतने घंटे, उतने मिनट तथा उतने सेकन्ड ही लगे उस व्यक्ति को वहाँ उतरने में। यह कैसा अद्भुत चमत्कार है। हाँ, तो मैं यह कह रहा था कि अगर संसार में नियम न होता तो फिर यह जो नियम में व्यतिक्रम है और वह उपस्थित होता। यहाँ पर अगर नियमों में कोई व्यतिक्रम नहीं दिखायी देता है तो इसका मतलब क्या है?—यही कि व्यतिक्रम नहीं है। संसार में एक अनुस्यूत (विद्यमान) सत्ता है जो भौतिक है—आप इस तरह से चिन्तन कर सकते हैं, जिन्हें ईश्वर में आस्था नहीं है। और जिन्हें ईश्वर की आस्था में विश्वास है उनके लिए पथ कुछ सुलभ और सहज हो जाता है। जिनके भीतर अपने संस्कार हैं वे इस संस्कार को माँ के दूध के साथ प्राप्त करते हैं। अगर ये संस्कार हमारे भीतर रहे तो हमारे लिए यह जो रास्ता है वह कुछ अधिक सुगम बन जाता है। तो ईशावास्योपनिषद् में क्या कहा गया है?—"इस संसार को भगवान से ढांक करके देखो"—यह एक पक्ष है। दूसरा पक्ष है—"जहाँ भी तुम्हारी नजर जाती है, ऐसा अनुभव करो कि सबके भीतर भगवान बैठे हुए हैं—वह भगवान का वासस्थान है, बैठकखाना है।' जैसे मुझसे कहा

आता है कि यह जो माइक है उसे हम ढंक करके देखें—तो इस प्रकार क्या दिखायी नहीं देता ? ईश्वर से ढंक करके दुनिया को देखो', जब कहा, आता है तो इसका मतलब हुआ कि ईश्वर ही दिखायी देता है। यह इसका पहला पक्ष है और ऐसा जो हम देखने का अभ्यास करते हैं, वही त्याग है "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा" ऐसा त्याग अपने जीवन में ला करके दुनिया का भोग करो। दुनिया के भोग में कोई आपत्ति नहीं है, कोई बाधा नहीं है। हाँ, तो कैसे हम दुनिया का भोग करें ? या तो इस दुनिया को ईश्वर से ढांककर देखें और दुनिया का भोग करें या फिर इस दुनिया में जहाँ भी हमारी नजर जाती है वहां पर भगवान को बैठे हुए देखें और दुनिया का भोग करें। एक ये जो देखना है—"इस दुनिया को ईश्वर से ढांक करके देखना" यह त्याग है। या फिर "दुनिया में जो भी दिखायी देता है उसमें हम भगवान को विराजते देखें", यह त्याग है।

इस त्याग के द्वारा हम दुनिया का भोग करें—यह कहा गया है। "मा गृधः"—लालच मत करो। "कस्य स्विद् धनम्"—धन भला किसका है ? हमारे जीवन में भी लालच कभी-कभी बड़ा रूप धारण कर लेता है जबकि, हमारे पास इतना पैसा है जिससे कि हम परिवार का ठीक-ठीक भरण-पोषण कर सकते हैं। जब हम retire होते हैं, सेवा-निवृत्त होते हैं तो कभी-कभी हमारी लोभ की वृत्ति, इतनी बढ़ जाती है कि हमारे पास भरपूर पैसा हो, तो भी हमें संतोष नहीं होता है। यह लोभ-वृत्ति हमें सतत परेशान करती है तथा हमारा संतुलन बिगाड़ती रहती है। इसी वृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए कहा गया। "मा गृधः"—लालच क्यों करते हो—धन भला किसका है ? इसका मतलब है कि मेरे पास सम्पत्ति अगर बहुत है तो वह सम्पत्ति प्रभु की है यह जो मेरे पास धन दौलत है वह भगवान का दिया हुआ एक trust है और मैं एक trustee के रूप में हूं, यह भाव है।

रॉकफेलर के जीवन का एक दृष्टांत आपके समक्ष मैं रखना पसन्द करूंगा। स्वामी विवेकानन्द उस समय शिकागो में थे। स्वामीजी का नाम दुनिया भर में फैल गया जब उन्होंने सितम्बर ११,१८९३ ई० को हिन्दू धर्म पर व्याख्यान दिया। शिकागो में जो विश्व धर्म परिषद् बैठी थी, आप जानते हैं कि सबसे बढ़िया व्याख्यान उन्हीं का रहा। सबसे बढ़िया, सबसे वैज्ञानिक और तार्किक। और हिन्दू धर्म का पताका उन्होंने एकदम सबसे ऊपर फहरा दी, अपने व्याख्यानों के माध्यम से और जैसा कि आप जानते हैं, स्वामीजी इस तरह विश्व प्रसिद्ध बन गये। अमेरिका का बड़ा-से-बड़ा घर उनके लिए खुल गया। एक बार स्वामीजी एक अमेरिकी सज्जन के घर पर निवास कर रहे थे। रॉकफेलर भी उन दिनों वहीं थे। उन दिनों रॉकफेलर बहुत धनी थे, उनकी अपूर्व सम्पदा थी। जिस घर में स्वामी विवेकानन्द ठहरे थे, उस घर का मालिक रॉकफेलर के मित्र थे। उनके किसी firm में partner भी थे। मित्र ने कहा, "ओ ! रॉकफेलर ! सुनो ! हमारे यहाँ एक भारतीय संन्यासी ठहरे हैं जिन्होंने अमेरिका क्या, सारी दुनिया में ही तहलका मचा दिया है—विशेषकर शिकागो में। तुम आकर के मिल लो—तुम्हें बड़ी प्रसन्नता होगी" रॉकफेलर ने कोई इच्छा नहीं जतायी। एक प्रकार से उन्होंने ऐसा दिखाया कि उनकी इसमें कोई रुचि नहीं है। ठीक है, कुछ दिन बीत गया। अचानक रॉकफेलर के मन में क्या आता है, वे सुबह ही सुबह चल पड़े हैं बिना किसी पूर्व सूचना के। जाकर के दरवाजे पर आहट दी जहाँ स्वामीजी रुके थे। बटलर

आकर के दरवाजा खोलता है। रॉकफेलर पूछते हैं। "Is Swamiji in ?" क्या स्वामीजी अन्दर हैं ? "हाँ, हैं। मैं उन्हें सूचना दे दूँ ?" —बटलर कहता है। रॉकफेलर ने कहा, नहीं जरूरत नहीं। बताओ वे किस कमरे में हैं ?" बटलर उन्हें study room में ले जाता है, जहाँ स्वामी विवेकानन्द बैठे कुछ पत्र लिख रहे थे। जब रॉकफेलर आये दरवाजे मे तो स्वामीजी ने देखा तक नहीं, वे लिख ही रहे थे। रॉकफेलर को लगा कि ये तो बड़ा दम्भी आदमी है, ऐसा बता रहा है जैसे उसने आहट ही नहीं सुनी है, जैसे काम में बहुत व्यस्त है। और स्वामीजी लिखते-लिखते ही रॉकफेलर के जीवन में घटी कुछ घटनाओं को बताने लगे। रॉकफेलर खड़े-खड़े सुन रहे थे। स्वामीजी बताते हुए घटनाओं के क्रम में कुछ ऐसी घटनायें बतायी जिसे रॉकफेलर को छोड़कर कोई दूसरा नहीं जानता था। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस आदमी को मेरे जीवन में घटी घटनाओं का पता कैसे चला ?—जबकि मुझसे भिन्न कोई दूसरा आदमी इनको नहीं जानता है। इन बातों को बताने के पश्चात् स्वामीजी ने कहा, "देखो, रॉकफेलर ! तुम्हारे पास इतनी जो धन-सम्पदा है, वह तुम्हारी नहीं है। इन्हें तुम अपनी समझने की भूल कर रहे हो। इसलिए तुम्हारे जीवन के ये सारे दुख हैं तुम ऐसा मानो। भगवान ने तुम्हें धन-दौलत दी है। देखो ! आज तुम मरोगे तो क्या चीज साथ में ले जाओगे ? इस सम्पदा में से एक तनिक-सा भाग भी तुम नहीं ले जा सकते। पर फिर भी तुम इस सम्पदा पर इतना घमंड कर रहे हो। ऐसा मानो कि तुम न्यासी हो, यह तो प्रभु का दिया हुआ न्यास है, यह भगवान का trust है और तुम इसके trustee हो, ईश्वर के द्वारा नियुक्त किये गये हो। अतः तुम भगवान की इस थाती (धरोहर) को भगवान के बन्दों में लगा दो —सेवा काम करो—लोगों की सहायता करने में इसे खर्च करो, इसका व्यय करो।" रॉकफेलर को बड़ा ही गुस्सा आया। कोई रॉकफेलर को इस प्रकार के उपदेश के वाक्य कहने का साहस नहीं कर सकता था और रॉकफेलर एकदम से बिगड़कर चले गये। जब मकान मालिक को मालूम पड़ा कि रॉकफेलर स्वामीजी से मिलने आये थे तो उन्होंने पूछा "क्यों, कैसा लगा स्वामीजी से मिलकर ? तो रॉकफेलर बोले "अरे, बड़ा ही गम्भीर है तुम्हारा स्वामी।" पर उन्होंने यह कहा कि उनके जीवन की कतिपय घटनाओं को स्वामीजी ने किस तरह बताया है। पर चिन्तन चल रहा है रॉकफेलर के मन में। और अचानक सात-आठ दिन बाद वे उसी प्रकार सुबह में स्वामीजी से मिलने आये। हाथ में उनके एक दस्तावेज था, आते ही जब बटलर ने दरवाजा खोला तो उन्होंने कहा कि मुझे स्वामीजी के पास ले चलो। स्वामीजी study में बैठे थे। रॉकफेलर आये और वह दस्तावेज उनके सामने पटकते हुए बोले "Take it and now thank me for this"—ये लीजिए और मुझे इसके लिए धन्यवाद दीजिए।' स्वामीजी ने उनकी तरफ देखा ही नहीं। वे दस्तावेज को पलटते रहे। उसमें कई लाख डॉलर की सम्पत्ति किसी सेवा-संस्था को दान में दिए जाने की प्रयोजना थी और उसके लिए उन्होंने ये कहा था कि रॉकफेलर फाउण्डेशन की यहाँ पर स्थापना की जा रही है। स्वामीजी इस दस्तावेज को देख मुस्कुराये और उसे वापस करते हुए कहा, "It is for you to thank." बाद में उस समय जब स्वामीजी नहीं थे रॉकफेलर ने अपने एक भाषण में उस प्रसंग का जिक्र करते हुए कहा था, 'उस समय मेरी आँखें बन्द थीं। पर मेरे जीवन में एक संन्यासी का आगमन हुआ और संन्यासी ने मेरी आँखें खोल दी कि धन-सम्पदा किसके लिए इकट्ठा

करता है? यह जो सम्पत्ति आज मुझे मिली है, जब इसे मैं समाज के काम के लिए देता हूँ मुझमें कितना fulfilment का भाव आता है।

अब यह कितना सत्य है। मैं अपने लड़के पर दो लाख रुपये भी खर्च कर सकता हूँ पर वही लड़का शादी होने के बाद मेरी तरफ नहीं देखता है। यही जीवन का ठोस सत्य है. यदि आप कितना ही कहते रहें कि "मेरा लड़का कितना आज्ञाकारी है मेरा लड़का बहुत अच्छा है।" हर बाप का बेटा उसके लिए बहुत अच्छा होता है यह तभी तक होता है जब तक उसका विवाह नहीं हुआ होता है। पर उसके पश्चात वही मुश्किल होती है। पिता को यही लगता है कि 'मैंने उसके लिए सारी सम्पत्ति दे दी—अपना बनाया मकान उसके नाम पर कर दिया पर इस वृद्ध दम्पत्ति को रहने के लिए ठीक से एक कमरा भी नहीं मिलता है। यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है। यह जीवन का सत्य है—अनुभव है। आप यह सब अनुभव करते हैं फिर भी हममें से प्रत्येक पिता यही सोचता है कि वह 'लड़का ऐसा हुआ पर मेरा लड़का ऐसा नहीं होगा'—यही माया है। स्वामी विवेकानन्द ने एक व्याख्यान देते हुए कहा था। "हम जो सोचते हैं कि दूसरों के साथ होना ठीक है पर मेरे साथ ऐसा नहीं होगा—ऐसा सोचना ही एक माया है यही जीवन का सत्य है।" इसका मतलब यह नहीं कि हम सब धन लुटा दें और बच्चों पर खर्च न करें। आप उन पर पूरा खर्च कीजिए। हम इसे अपना कर्त्तव्य मानकर खर्च करें। पर यदि उसके साथ-साथ हमारे अन्दर जो इच्छा बनी रहती है return की और जब हमें लगता है कि लड़का मेरी सेवा करेगा, मेरी देखभाल करेगा और जब इच्छा के अनुरूप ऐसा नहीं होता है तब मनुष्य टूटने लगता है उसके जीवन में हताशा आती है। यदि हम पहले से यह मानकर चलें कि ठीक है—संसार का ऐसा नियम है और मेरे लड़के के साथ जो ऐसा होगा' तो सम्भव है हम इस हताशा पर काबू कर पायेंगे। यदि मेरे लड़के के साथ ऐसा नहीं होता है तो मैं इस नियम का अपवाद हूँ। 'I am exception to this rule.' पर जीवन में हर समय ऐसा exception नहीं बनता। ऐसी ही परिस्थिति में कुछ लोग मेरे पास आते हैं और कुछ लोग तो रोकर पूछते हैं कि स्वामीजी! हम क्या करें? तो मैं उनको सलाह देता हूँ। वह सलाह आपको भी देता हूँ या आपके सामने एक विचार के रूप में रखता हूँ कि 'देखो भाई! तुम अपने लड़के को पालपोस कर के ठीक से विवाह कर दो—विवाह होने के बाद बनते तक अपने से अलग एक मकान दे दो, किराये पर ही सही और कहो: बेटे! जाओ उस मकान में रहो—तुम लोग आनन्द से रहो—हम आनन्द से रहें—आना जाना करते रहो' ठीक है, एक ऐसा भाव है मानो 'हमने लड़के के लिए सब कुछ कर दिया है, ठीक है, वे अच्छी तरह रहें।' एक पक्ष में मैं यह रखता हूँ हरदम। इससे हममें शान्ति बनी रहती है। लड़का यदि आकर अपनी सेवायें देता है—कहता: "चलिए पिताजी! साथ में रहिए, आप अकेले रहते हैं तो अच्छा नहीं लगता है" तो ये सुनना बहुत ही अच्छा लगता है। पर जाकर के रहना अच्छा नहीं। लड़का बुलाता है, वह अच्छा लगेगा। आप उस अच्छे लगने की ही तैयारी रखिए। दूसरों को बताने में गर्व का अनुभव कीजिए कि 'मेरा बेटा मुझे बुलाता है, कहता है कि वह मेरे बिना रह नहीं सकता है।' उनको हमारे बिना अच्छा नहीं लगता, यह बहुत ठीक है। जाऊँगा तो अतिथि के रूप में दो तीन दिन रहूँगा और चला जाऊँगा। यही भाव आप अपने जीवन में बनाकर

रखिए। आप ज्यादा अपेक्षा मत कीजिए। और आप अब ज्यादा अपेक्षा नहीं करते तथा उससे अब ज्यादा मिलता है तो आप बड़े सुखी रहते हैं। आपकी energy बढ़ती है—आपकी ताकत बढ़ती है और कर्म करने की क्षमता बढ़ती है।

और दूसरी बात यह है कि सब कुछ आपने बेटे पर ही खर्च मत कीजिए। अपने लिए भी बचाकर रखिए। अपने लिए अपनी पत्नी के लिए एक घर बचाकर के रखिए। बाद में घर लड़के का होगा—यह ठीक है। पर वह आपके दावे का घर होगा। आप अपनी मर्जी के अनुसार उसका सहयोग करेंगे। यही आप मन में रखिए कि आपके पास जो पैसा है वह आपके काम का रहेगा। आप बच्चों को दीजिए पर आपका हाथ कभी माँगने के लिए न उठे, बेटों के पास। अगर हाथ उठे भी तो कुछ देने के लिए हो—लेने के लिए नहीं। हममें जब लेने की इच्छा उत्पन्न होती है तो हम कहते हैं, "देखो भाई! हम बूढ़े हो गये। मेरा लड़का कैसा निकम्मा निकला कि हमारे बारे में कुछ देखता भी नहीं है। अरे, उसकी पढ़ाई पर हमने दो लाख खर्च कर दिया, जीवन की सारी कमाई फूंक दी। और देखो, आजकल ये लोग कैसे होते हैं कि पूछते भी नहीं है। कभी आकर के एक बार पूछकर भी नहीं जाते हैं कि आप लोग कैसे हैं।" यह भाव है। जो हम इतनी प्रशंसा करते थे अब हम घर के परिवार वालों की निन्दा करने लगे। तो आप इस भाव को जानिए और ऐसा मान कर चलिए कि यह अनिवार्य रूप से हमारे साथ घटेगा ही। इसलिए हम अपने बच्चों पर निर्भर रहने की, उनसे लेने की इच्छा वृत्ति को अवश्य ही नियंत्रण में रखें।

तो सेवा-निवृत्ति की जो तैयारी है उसके साथ उपरोक्त इस भावना की भी तैयारी करके रखिए। आपके इस सेवा-निवृत्ति की तैयारी पर आये लोगों को धन्यवाद देता हूँ तथा उनके सुखमय एवं कर्मठ जीवन की कामना करता हूँ। मैं उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्यक्रम में बुलाया और मुझे बड़ी खुशी हुई।

धन्यवाद

बड़ा कौन ?

'शिवपुराण' में वर्णित है कि एक बार ब्रह्मा और विष्णु में विवाद छिड़ गया कि उनमें कौन बड़ा है ? यह विवाद युद्ध स्तर तक बढ़ गया। इसी समय उनके मध्य एक विशाल स्तम्भ प्रकट हुआ। इसे देखकर दोनों ने निर्णय किया कि इस स्तम्भ के एक सिरे को ब्रह्मा छूकर आयें और दूसरे को विष्णु। जो पहले छू लेगा, वही बड़ा माना जायेगा।

दोनों देवता काफी समय तक स्तम्भ के सिरों को ढूंढते रहे मगर दोनों में कोई भी सफल नहीं हो सका। हारकर दोनों वापस लौट आये। तभी भगवान शंकर प्रकट हुए। उन्होंने बताया कि यह स्तम्भ वे स्वयं हैं। यह उन्हीं का ज्योतिर्लिंग है। विष्णु और ब्रह्मा ने स्वीकार किया कि उन दोनों में बड़ा होने का कोई अधिकार नहीं। महादेव तो शंकर ही है।

जिस समय यह घटना घटी, वह फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी ही थी। तभी से महाशिवरात्रि भी मनायी जाने लगी। भगवान शंकर ने उस स्तम्भ ज्योतिर्लिंग को छोटा बना दिया ताकि उसकी पूजा सर्वत्र सुलभता से की जा सके।

दास्य भक्ति

—प्रा० चन्द्रकान्त चौधरी
श्री सन्त गजानन महाराज
अभियांत्रिकी महाविद्यालय,
शगांव, जिला-बुलडाणा
महाराष्ट्र-४४४-२०३

कच्चा मैं एवं पक्का मैं

भगवान श्रीरामकृष्णदेव कहा करते थे, "जीवों के लिए भक्ति ही उपाय है।" वे ऐसा भी कहते थे कि 'जीव के पक्ष में ईश्वर का दास मैं, ईश्वर का पुत्र मैं, इस प्रकार का मैं, यह पक्का मैं है।" जो मैं कहता है—मैं कर्त्ता हूँ, मैं सब कुछ करता हूँ, वह कच्चा मैं है। ईश्वर के प्रति भक्ति करने के लिए एक भाव का अवलंबन करना चाहिए। शास्त्रों में पाँच प्रकार के मुख्य भाव कहे गये हैं। शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर। ये ही वे पाँच भाव हैं। सृष्टि के रचयिता ईश्वर का शांत भाव से चिंतन करना यह शांत भाव है। वैदिक ऋषियों का यही भाव था। मैं ईश्वर का दास, ईश्वर का सेवक—इस भाव से उनकी सेवा करना यह दास्य भाव है। महावीर हनुमानजी का प्रभु रामचन्द्रजी के प्रति यही भाव था। सख्य का मतलब मैत्री, मित्र प्रेम। भगवान से मित्रवत् प्रेम करना यह सख्य भाव है। अर्जुन का भगवान श्रीकृष्ण के प्रति यही भाव था। वात्सल्य का अर्थ है ईश्वर को अपनी संतान समझकर उनका लालन-पालन करके पुत्रवत् प्रेम करना। माता यशोदा का भगवान श्रीकृष्ण के प्रति यही भाव था। मधुर भाव यानि ईश्वर को कांत या पति समझकर उनसे प्रेम करना। गोपियों का भगवान श्रीकृष्ण के प्रति यही भाव था। इस लेख में हमलोग दास भाव की ही चर्चा करेंगे। यहां पर एक बात ध्यान देने योग्य है, वह यह कि भक्ति सगुण ईश्वर के प्रति संभव है। निर्गुण ईश्वर के प्रति भक्ति संभव नहीं। ईश्वर का सगुण भाव फिर वह साकार हो या निराकार उसके प्रति भक्ति संभव है।

दास्य

दास्य भाव में दास्य भाव के प्रकटिकरण का अर्थ भगवान की सेवा ही है। स्वयं को भगवान का दास मानकर उनकी सेवा करना—यही दास्य भक्ति का प्रकटीकरण है। भगवान का भजन भी एक प्रकार से मानसिक सेवा ही है। संस्कृत में भज् धातु सेवायाम् इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। पूजन भी एक प्रकार की सेवा ही है। नारद भक्ति सूत्र के ६६वें सूत्र में नारद कहते हैं—

> "त्रिरूप भङ्ग पूर्वकं
> नित्यदास नित्यकान्ता भजनात्मकं
> वा प्रेमैव कार्यं प्रेमैव कार्यम्"

उनकी दास्यभक्ति उन्हीं के मुख से सुनना चाहिए। एक बार प्रभु रामचन्द्र सभा में बैठे थे तब उन्होंने हनुमानजी से पूछा कि "तुम मुझे किस दृष्टि से देखते हो।" उसपर हनुमानजी ने उत्तर दिया—

"देहबुद्धया दासोऽस्मि। जीव बुद्धया त्वदंशक ॥
आत्मबुद्धया त्वमेवाहम। इति में निश्चता मती ॥"

अर्थात् हे प्रभु जब मेरी देहबुद्धि होती है तब तुम प्रभु हो एवं मैं तुम्हारा दास हूँ, इस भाव से मैं आपकी ओर देखता हूँ। जब मेरी 'मैं जीव' ऐसी बुद्धि होती है तब तुम पूर्ण एवं मैं तुम्हारा अंश हूँ इस दृष्टि से मैं आपकी ओर देखता हूँ तथा जब मेरा मैं आत्मा हूँ, ऐसा बोध होता है तब तुम और मैं एक ही हूँ, हम में अभेद है, इस दृष्टि से मैं देखता हूँ। यही मेरा निश्चित मन है।

महापुरुष महाराज स्वामी शिवानन्दजी, इन्हें भी एक बार कुछ साधुओं ने पूछा की ज्ञान श्रेष्ठ है या भक्ति, उस पर उन्होंने उत्तर दिया ज्ञान मिश्र भक्ति श्रेष्ठ है" तथा उसका आदर्श हैं महावीर हनुमान। ज्ञान मिश्र भक्ति में भगवान यह हमारा स्वरूप है। हम भगवान से अभिन्न हैं, यह ज्ञान का भाग है। स्वामीजी को महावीर हनुमान का यह आदर्श इतना अच्छा लगता था कि बेलुड़ मठ में हनुमानजी का मंदिर बनाने की इच्छा उन्होंने व्यक्त की थी। उन्हीं की इच्छानुसार महापुरुष महाराज स्वामी शिवानन्दजी ने काशी में अद्वैत आश्रम में ब्रह्मचर्यमूर्ति महावीर हनुमानजी की मूर्ति स्थापित की है। आज भी वहाँ पर श्री हनुमानजी की नित्यसेवा पूजा होती है।

कलियुग में प्राण अन्नगत है। इसी कारण देहबुद्धि अधिक है। इस तीव्र देहबुद्धि के कारण मैं भगवान का दास हूँ। यह भाव काफी अनुकूल है। यही भाव हमें देहबुद्धि को लांघकर क्रमश: जीवबुद्धि एवं आत्मबुद्धि देने में समर्थ होता है। हनुमानजी की विशेषता यह है कि आत्मबुद्धि रहते हुए भी वे नित्य दास्य की कामना करते हैं। हनुमानजी के दास्य के बारे में प्रभु श्रीरामचन्द्र कहते हैं —

"एकैक स्योप काराय प्राणान्दस्यामि ते कपे।
शेषस्ये होपकाराय भवाम ऋणिनो वयम् ॥"

अर्थात् हे हनुमान तुम्हारा मुझ पर अनन्त उपकार है। तुम्हारे एक-एक उपकार के लिए मैं यदि मेरे प्राण अर्पण करूँ तो वह भी पाँच ही हैं। अन्य सब उपकारों के लिए मैं तुम्हारा हमेशा ऋणी रहूँगा।

इस प्रकार के दास्य के लिए स्वयं प्रभु श्रीरामचन्द्र हनुमानजी के ऋणी हैं।

दस्य भक्ति का चरम उत्कर्ष

सच्चा भक्त दास की अपेक्षा मोक्ष को भी तुच्छ समझता है। दास्य भक्ति में लक्ष्मणजी की भी योग्यता कम नहीं। राजवैभव त्यागकर वे केवल प्रभु रामचन्द्रजी की सेवा के लिए वन में आये। लक्ष्मी महाविष्णु का दास्य करती है। सेवा अखण्ड करते रहना चाहिए। सेवा के अनेक प्रकार हैं। हमलोग उसकी गहराई में नहीं जा पायेंगे। पर मुख्यत: सेवा काया वाचे एवं मन से अखण्ड चलना चाहिए। सच्चे संत दास्य भाव की आन्तरिक इच्छा करते हैं। इसी अर्थ का एक श्लोक भागवत में कपिल देवहूती संवाद में दिया है।

"सालोक्य सर्ष्टि सामीप्य सारुत्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृण्हन्ति विना मत्सेवनं जना: ॥
(३-२९-१३)

अर्थात् मेरे भक्त सालोक्य, सार्ष्टि (ऐश्वर्य) समीपता सरूपता एवं सामुज्य मोक्ष दिया जाने पर भी मेरी सेवा के बिना वे कुछ लेते नहीं।

भगवान की अखण्ड दास्यभक्ति करना एवं उनकी सेवा की आत्मिक कामना करना ही दास्य भक्ति का चरम उत्कर्ष है।

देव लोक

—ब्रह्मलीन स्वामी अपूर्वानन्द
अनुवादक – स्वामी ज्ञानातीतानन्द
रामकृष्ण आश्रम, राजकोट ।

बेलूड़मठ में गांधीजी :—

इस वर्ष स्वामीजी के उत्सव के दिन सपत्नीक महात्मा गांधी, पंडित मोतीलाल नेहरू, मोहम्मद अली और भी कई साथियों को लेकर बेलुडमठ दर्शन करने आये। उन लोगों ने कुछ दिन पूर्व ही मठ के अधिकारियों को आने की सूचना प्रदान कर दी थी, इस समाचार को गुप्त रखने का अनुरोध किया था। महापुरुष महाराज ने उन लोगों के स्वागत सत्कार की सब व्यवस्था की थी। इस दिन दोपहर के बारह बजे के भीतर ही ठाकुर का भोग आदि सब हो गया, ठाकुर को कुछ देर के लिए शयन दिया गया। एक बजे के पहले ही ठाकुर घर खोल दिया गया। एक बजे के बाद जब महात्मा गांधी दलबल के साथ आये तब महापुरुष महाराज ऊपर के दरवाजे के सामने खड़े होकर उनलोगों का स्वागत किया एवं सभी को मन्दिर के भीतर ले गये। साथ में मुहम्मद अली मन्दिर में प्रवेश करने में कुछ संकोच कर रहे थे। महापुरुषजी उनको सादर आह्वान कर भीतर ले गये। ठाकुर घर में प्रवेश करके महात्माजी ने ठाकुर के उद्देश्य से हाथ जोड़कर प्रणाम किया। श्री श्रीमां का फोटो देखकर उनका परिचय पूछने पर महापुरुषजी ने कहा : 'वे श्रीरामकृष्णदेव की विवाहिता पत्नी श्रीसारदा देवी की फ़ोटो है। श्री रामकृष्ण के भक्त लोग उनको माता ठाकुरानी कहते हैं' - इत्यादि। बाद में शयनघर में जाकर दो अलमारियों में रखी हुई ठाकुर के द्वारा व्यवहृत चटाई दाहिने हाथ से छूकर महात्माजी ने अपने हाथ को सिर से लगाया। ठाकुर की हस्तलिखित पुस्तकें, यात्रागीत की पंक्तियां आदि देखकर गांधी जी ने कुतूहलपूर्वक प्रश्न किया : 'रामकृष्णदेव तो लिखना-पढ़ना नहीं जानते थे।' उत्तर में महापुरुष जी ने कहा : 'उनकी शिक्षा पाठशाला में ही समाप्त हो गयी। उनके हाथ की लिखावट खूब सुन्दर थी।' तब गांधीजी आग्रहपूर्वक पुस्तकों को हिला-डुला कर देखा। मैं मन्दिर में ठाकुर भंडार में काम करता था इसलिए इस समय मुझे मंदिर में उनलोगों के साथ-साथ रहने का सुयोग प्राप्त हुआ था। ठाकुरघर देखने के बाद दलबल सहित गांधीजी नीचे उतरकर स्वामीजी का घर देखने के लिए गये। इधर महापुरुषजी ऊपर की छत से जल्दी-जल्दी जाकर स्वामीजी के घर के सामने खड़े होकर गांधीजी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। मैं भी मन्दिर का दरवाजा बन्द करके छत के ऊपर से जाकर स्वामीजी के घर के पास आया। स्वामीजी के घर में प्रवेश करके सभी लोग कौतूहलपूर्वक स्वामीजी की व्यवहृत वस्तुएं देखने लगे। महापुरुषजी ने बातचीत के दौरान स्वामीजी बड़ी खाट गांधीजी को दिखाकर बोले : 'स्वामीजी ने इस खाट को कभी भी

रात्रि के दिन महंतों को कल्याणेश्वर शिव की पूजा करने भेजते। सुना है ठाकुर दक्षिणेश्वर से एक-दो बार नीलकण्ठ महादेव की उपवास के दिन कल्याणेश्वर शिव की पूजा करने आये थे। कल्याणेश्वर शिव खूब जाग्रत देवता हैं। शिवरात्रि के दिन तो वहाँ मेला लगता है। सारा दिन-रात हजार-हजार मनुष्य शिव पूजा करने के लिए आते हैं। इत्यादि बहुत सी बातें शिवरात्रि के प्रसंग में चाले।'

बेलुड़ मठ में शिवरात्रि :—

मठ में उस बार विशेष समारोह के साथ शिव-रात्रि के चार प्रहर की शिवपूजा की व्यवस्था हुई थी। अधिकांश साधुओं ने निर्जल उपवास करके शिवरात्रि मनाया। प्राचीन भोजन की जगह में शिवपूजा का आयोजन हुआ था। दाहिनी ओर गाना हो रहा था। बरामदे के अन्तिम भाग में यूकीलिप्टस पेड़ के नीचे खूब बड़ी धूनी जलायी गयी थी, शरीर में भस्म लगा कर, कौपीन पहिन कर, बड़ी-बड़ी रुद्राक्ष की माला गले में पहन कर, बड़ा-बड़ा चिमटा हाथ में लेकर कई साधू नागा सजकर सारी रात 'बम-बम हर-हर,' ध्वनि करते हुए शिव का भजन करते हुए ताण्डव नृत्य करने लगे। चार प्रहर दूध, दही घी और मधु इस चार उपचार से शिवजी को स्नान कराना होता है। प्रत्येक प्रहर की पूजा के बाद खूब उच्च स्वर में शिवस्तोत्र का पाठ होता है एवं 'जय शिव शंकर', 'बेलपाता नेय माथा पेते', तार्थया-तार्थया नाचे भोला' इत्यादि गाना सस्वर एवं उच्च स्वर में गाया जाता था। बहुत से लोग साथ-साथ में नृत्य करते थे। प्रवर्त प्रत्येक प्रहर में अनेक साधु पूजा का स्थान घेर कर जप कर रहे थे। फल मिठाई के साथ शिवजी को भांग और शरबत का भोग दिया गया, एवं प्रत्येक प्रहर में भोग निवेदन के बाद एक चिलम गाँजा शिव को भोग दिया गया। सारी रात साधुओं द्वारा 'हर हर बम बम' की ध्वनि से मठ गुंजायमान हो गया था। उस समय गृहस्थ भक्तों की संख्या बहुत कम थी। शिवरात्रि में दो-एक बेलुड़ ग्राम के भक्तों को छोड़ कर और कोई स्त्री-पुरुष आते नहीं थे। चतुर्थ प्रहर में पूजा के अन्त में होम करके पूजा समाप्त की गयी। दिन में विभिन्न समय साधु लोग दल-बल सहित अथवा अकेले 'शिवपूजा' के लिए 'हर हर बम बम' की आवाज करते हुए कल्याणेश्वर शिव की पूजा करने के लिए गये थे।

श्रीरामकृष्ण की तिथि पूजा : —

शिवरात्रि के दो दिन बाद ही ठाकुर की तिथि पूजा। इसके पहले महापुरुषजी के पास समाचार आया था कि राजा महाराज ठाकुर के उत्सव में बेलुड़ मठ नहीं आ सकेंगे। काशी में ही रहेंगे। महाराज आने पर मठ में ठाकुर की तिथिपूजा के दिन संन्यास देते थे, वह बन्द रहेगा। तिथि-पूजा के दिन ही ठाकुर की विशेष पूजा का अनुष्ठान होता था। दिन में केवल ठाकुर की विशेष पूजा ही नहीं दशावतार और विभिन्न आचार्य एवं देव देवी की पूजा भी होती। तिथि-पूजा के दिन ही ठाकुर का 'आत्माराम की डिबिया' वेदी के भीतर से निकाली जाती थी एवं महापुरुष महाराज स्वयं खूब भाव के साथ 'आत्माराम' की पूजा करते – महास्नान कराते चन्दन, फूल, विल्वपत्र, माला आदि के द्वारा सुन्दर सजाते। इसी प्रकार वर्ष में मात्र कुछ दिन 'आत्माराम' की पूजा की व्यवस्था थी।

उन दिनों 'आत्माराम की डिबिया' वेदी के भीतर ताले में बन्द रहती थी। विशेष-विशेष दिन 'आत्माराम की डिबिया' वेदी से निकाल कर पूजा व स्नानादि कराया जाता था। इन सब दिन मठ के साधुओं में से अनेक मन्दिर में जाकर साष्टाङ्ग होकर ठाकुर की पादुका को प्रणाम

करके 'आत्माराम' को स्पर्श और मस्तक पर धारण करते थे। बेलुड़ मठ में रहने से यह विशेष सुयोग मिलता था। संन्यास और ब्रह्मचर्य होने पर नये संन्यासी और ब्रह्मचारी आत्माराम को स्पर्श करके प्रणाम कर सकते थे। पुराने मन्दिर में जितने दिन ठाकुर-पूजा हुई थी उतने दिन तक इसी प्रकार चला था। बाद में १९३८ ई० १४ जनवरी शुक्रवार मकर संक्रांति के दिन प्रातःकाल स्वामी विज्ञानानन्द महाराज ने श्रीरामकृष्णदेव के नये मन्दिर की प्रतिष्ठा की। 'आत्माराम की डिबिया' की पुजा करने के बाद वेदी के भीतर चिरकाल के लिए स्थापित कर दी गयी।

सिस्टर निवेदिता

—सुश्री जसबीर कौर आहूजा
पटियाला, पंजाब।

15. माँ की चहेती

१९०७ में निवेदिता ने पश्चिम की यात्रा की और वहाँ दो साल रहीं। १९०९ में वह भारत वापिस आयी। वापिस आकर सच्ची खुशी भरे शब्दों में उन्होंने अपने एक मित्र को लिखा, "आह! अपने अध्ययन कक्ष (Study Room) से बाहर आना और श्रीमाँ के निकट होना कितना आनन्द दायक है यह कितने कमाल की बात है मैं तुम्हें बता नहीं सकती। वास्तव में यह स्थान दुर्लभ है। हृदय में अद्भुत सपनों का संसार यहीं मेरे सामने व्यापक हैं।

बाग बाजार में सबसे बड़ी आकर्षण शक्ति श्रीमाँ थी। १८९९ के उस पवित्र दिन जब से उन्होंने श्रीमाँ के दर्शन किये थे उनका हृदय भी माँ की ओर खिंच गया था। आरम्भ में जब वह बाग बाजार में रहने आयी थी तब वे श्रीमाँ की छत्र छाया में थी और किराये पर लिये हुए दोनों घर माँ के घर के बहुत नजदीक थे।

कभी-कभी श्रीमाँ अपने गाँव के घर जयराम बाटी में रहने जाया करती थी परन्तु जब भी वह कलकत्ता वापिस आती तो निवेदिता के स्कूल में अवश्य जाती। निवेदिता उस दिन को त्योहार के उत्सव की तरह मनाती थी और दरवाजों को फूल पत्तियों से सजाती थी। स्वयं सारे कमरों की सफाई देखती और माँ के चरणों पर लड़कियों को फूल चढ़ाने के लिए कहती थी। ज्यों ही श्रीमाँ टाँगे से नीचे उतरती वह उन्हें नीचे झुककर प्रणाम करती थी।

अपनी तरफ से निवेदिता यह भी ध्यान रखती थी कि जब भी सम्भव हो सके वह माँ से मिलने जाये। श्रीमाँ उन्हें "मेरी प्यारी बेटी" कहकर बुलाती थी और निवेदिता के लिए वह "परम प्यारी माँ" थी। माँ के पास बैठकर वह अपने आप को पाँच साल के बच्चे के समान समझती थी। अत्यन्त प्रेम और चाहत भरी दृष्टि से वह श्रीमाँ की ओर देखती रहती और एक छोटी सी मुस्कराहट से ही उनका हृदय आनन्द से भर जाता था। माँ की सेवा में छोटे-छोटे काम करना उन्हें बहुत अच्छे लगते थे। श्रीमाँ के बैठने के लिए जब वे दरी बिछाती तो उनका हृदय आनन्द से गद्‌गद् हो उठता। तेज रोशनी चमक होने पर वह उनके लिए छाया का प्रबन्ध करती। उन दोनों के बीच उपहारों का आदान-प्रदान भी हुआ करता था। यद्यपि निवेदिता माँ को कई तोहफे देना चाहती थी परन्तु पैसे की कमी के कारण वह अपनी इच्छा पूरी नहीं कर पाती थी। एक बार १९०६ में जब वह पश्चिम से वापिस आयी तो माँ के लिए कुछ तोहफे लेकर आयी जो माँ ने बहुत सम्भाल कर रखे। एक बार माँ को उन्होंने एक जर्मनी डिब्बी दी तो उसमें उन्होंने श्रीरामकृष्ण परमहंस के पवित्र बाल रखे और कहा, "जब भी मैं इसकी पूजा करूँगी मैं निवेदिता को भी साथ ही याद करूँगी।" दूसरी ओर माँ ने उन्हें एक बार ऊन की पंखी बना कर दी जिसको लेकर निवेदिता उन्मुक्त हो गयी और कहा यह कितनी शानदार है। यह कितनी सुन्दर है।" उनकी अत्यन्त प्रसन्नता को देखकर माँ ने कहा "देखो एक छोटे से उपहार को पाकर निवेदिता कितनी खुश है। कितना विश्वास! कितनी अच्छाई है। यह नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) की कितनी श्रद्धालु है। नरेन्द्र ने इस देश में जन्म लिया और निवेदिता अपना घर छोड़कर कितनी दूर नरेन्द्र का काम करने आयी। देखो यह है एक शिष्य का अपने गुरु के प्रति एक उदाहरण।"

जब निवेदिता अपने शिविर में होती तो भी उनके विचार श्रीमाँ के साथ रहते और माँ को अपने काम के बारे में सम्पूर्ण विचार देना चाहती थी। १९१० में जब निवेदिता अमरीका में धन इकट्ठा कर रही थी, तो माँ ने उन्हें लिखा

"मेरा बहुत प्यार, मेरी प्यारी बेटी निवेदिता, मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि तूने मेरी चिरन्तन शान्ति के लिए परमात्मा से प्रार्थना की। तू उसी निरन्तर आनन्दमयी माँ का स्वरूप है। मैं तेरी फोटो जो कि मेरे पास है प्रायः देखती हूँ और फिर मुझे ऐसा लगता है जैसे तू मेरे पास उपस्थित है। मैं उस दिन और उस वर्ष तक की प्रतीक्षा कर रही हूँ, जब तू वापिस आयेगी। परमात्मा करे कि जो प्रार्थना तूने अपनी परम पवित्र आत्मा की गहराइयों से की है वह सत्य हो। मैं स्वस्थ और प्रसन्न हूँ मैं सदैव यही प्रार्थना करती हूँ कि वह तेरे नेक कामों में तेरी सहायता करें और तुझे शक्तिशाली और प्रसन्न बनायें। मैं तेरे जल्दी आने की प्रार्थना करती हूँ।

परमात्मा तेरी भारतवर्ष में महिला आश्रम स्थापित करने की इच्छा को सफल बनायें और नारियों का यह आश्रम सभी को धर्म के सच्चे अर्थ का ज्ञान करवाने के उद्देश्य में पूर्ण हो।

वह जो विश्व का प्राण है वह जो अपनी ही स्तुति का गान कर रहा है और तू यह दैवीय संगीत उन वस्तुओं द्वारा सुन रही है जो अस्थिर है। प्रकृति, पक्षी और पहाड़ उसी परम प्रभु के गुणगान कर रहे हैं। दक्षिणेश्वर का यह वृक्ष भी निःसंदेह माँ काली को अपना गीत सुना रहा है और धन्य है वे लोग जो यह सुन सकते हैं।

तेरे लिए मेरा बहुत-बहुत प्यार और तेरी आत्मा के निवास के लिए मेरी प्रार्थनाएं और आशीर्वाद, निःसन्देह तू बहुत उत्तम काम कर रही है परन्तु अपनी बंगाली भाषा न भूल जाना। अन्यथा जब तू वापिस आयेगी तो मैं तुझे समझ नहीं सकूंगी। यह जानकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि तू अपने भाषणों में ध्रुव भक्त, सावित्री सीता और राम आदि की बातें करती है। उनके उच्च और पवित्र जीवन का वर्णन संसार की समस्त झूठी बातों से श्रेष्ठ है। मुझे इसका पूरा विश्वास है। आह! प्रभु का नाम और उसकी लीला कितनी अपरम्पार और सौन्दर्यमयी है।

तेरी ही,
मां"

अब १९१० में निवेदिता फिर अमेरिका गयी तो वह उनकी सखी श्रीमती सारा बुल बहुत बीमार थीं। वह उस समय बोस्टन में थी और वहां एक चर्च में सारा के लिए प्रार्थना करने गयी। वहां उन्होंने माता मैडोना (ईसा की मां) के रूप में श्रीमां के दर्शन किये, घर पहुंचते ही तुरन्त मां को एक पत्र लिखा।

"परम प्यारी मां,

आज सुबह सवेरे ही मैं चर्च में सारा के लिए प्रार्थना करने गयी। वहां उपस्थित सारे ही लोग मसीह की माता "मेरी का चिन्तन कर रहे थे और अचानक मैंने आपका ध्यान किया, आपका अत्यन्त प्यारा चेहरा, प्यार भरी दृष्टि, आपकी सफेद साड़ी और दोनों कंगन, यह सब कुछ वहां था। और यह मैंने प्रत्यक्ष महसूस किया कि आपकी ही उपस्थिति थी जिसने बेचारी सारा को आशीर्वाद और तसल्ली देनी थी और आप जानती हैं मां मैंने सोचा कि मैं कितनी मूर्ख थी कि आपके कमरे में बैठकर भी रामकृष्ण की संध्या आरती के समय ध्यान करने की कोशिश करती थी, मैं यह क्यों न समझ सकी कि आपके चरणों में एक नन्हे बच्चे की तरह बैठ जाना ही काफी था। मेरी प्यारी मां! आपका हृदय प्यार से भरा हुआ है परन्तु वह हमलोगों की तरह संदिग्ध और वासना भरा प्रेम नहीं है। न ही वह सांसारिक प्रेम के समान है बल्कि वह मीठा और शान्त है जो सबके लिए कल्याणकारी है, और किसी का बुरा नहीं चाहता। यह स्वर्णिम प्रकाश की किरण है जो निरन्तर गतिशील है। कितना भाग्य भरा वह रविवार था जब कुछ महीने पहले मैं आपके पास भागकर आयी थी। गंगा तट पर जाने से पहले वह मेरा अन्तिम काम था और तुरन्त ही मैं दौड़कर आपके पास आयी थी केवल एक पल के लिए। जब मैं वापिस आयी और उस समय आपने मुझे जो आशीर्वाद दिया था और जो खुशी भरा आपने मेरा स्वागत किया था उससे मैं कितनी उन्मुक्त महसूस कर रही थी। बहुत प्यारी मां! मेरी इच्छा है कि मैं आपको एक दिन भजन या प्रार्थना भेज सकूं परन्तु न जाने वह भी बहुत दिखावे वाला ऊंचा और शोर भरा लगेगा। निश्चय ही आप परमात्मा की एक अद्भुत सृष्टि है। श्रीरामकृष्ण की निजी यज्ञ पात्र है जिसमें सारे संसार के लिए उनका प्रेम भरा हुआ है आप उनकी निशानी हैं जिसको उन्होंने अपने बच्चों के लिए साथ रखना है और उन्हें एकान्त सुनसान दिनों में हमें बहुत ही शान्त और चुपचाप होना चाहिए थोड़े से हास परिहास पूर्ण पलों को छोड़कर।

निश्चय ही परमात्मा की सारी दिव्य वस्तुएं मूक होती हैं। अनसुना और अनदेखी ही हमारे जीवन में प्रकट हो जाती है। मौन वायु, सूरज की शान्त रोशनी, बागों की मधुरता और गंगा माता की सरसता में सब मूक वरदान है मां! जो आपकी तरह है।

माँ ! कृपा करके बीमार सारा के लिए आशीर्वाद प्रदान कीजिए क्योंकि कभी-कभी चिंतन करना उस निरंकार परमतत्म के ध्यान करने के बराबर नहीं है जो प्यार और घृणा मे बहुत दूर है। क्या वह परम पिता परमात्मा के अन्दर कमल पात्र और उसकी बरकत भरी बूंद के समान शोभायमान नहीं है जो सांसारिकता के स्पर्श से बहुत मुक्त है ?

"सदैव मेरी परम प्यारी माँ

मैं हूँ आपकी पगली बेटी निवेदिता।"

निवेदिता के स्वास्थ्य के लिए मां को चिन्ता और उसके काम में माँ की गहरी रुचि निवेदिता के लिए सदैव प्रेरणा और शक्ति का स्रोत रही।

★

युव मंच

सर्वधर्म समभाव के उद्गाता : स्वामी विवेकानन्द

—स्मृति सुमन
छात्रा, बी. ए. ऑनर्स (इतिहा
राजेन्द्र कॉलेज, छपरा।

घटना इक्कीस जनवरी, अठारह सौ चौरानवे (२१ जनवरी, १८९४) 'ला सै लेट अकादमी' की बैठक की है। किसी ने स्वामीजी से पूछा था "यदि आपका धर्म, जो आप दावा करते हैं, वैसा ही है, यदि वही सच्चा धर्म है तो क्या कारण है कि आपके देशवासी जितने सभ्य हैं, उससे अधिक सभ्य नहीं हो सके ? उसने दुनिया के राष्ट्रों के बीच उनका ऊँचा क्यों नहीं उठाया ?" स्वामीजी ने गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया था—"क्योंकि वह किसी भी धर्म का क्षेत्र नहीं है।...... मेरे देशवासी दुनिया में सबसे अधिक, या किसी भी जाति के समतुल्य नैतिक हैं। वे अपने मानव भाइयों के अधिकारों के प्रति मूक पशुओं तक के प्रति कहीं अधिक ध्यान देते हैं। परन्तु वे भौतिकवादी नहीं हैं।"

स्पष्ट है कि धर्म की सही अवधारणा थी स्वामीजी को। उन्होंने धर्म के मर्म को समझा था और जीवन के साथ उसे जोड़कर एक नवीन मार्ग दिखाया था मानव को। इतिहास साक्षी है इस बात का कि आज तक किसी भी महान सफलता के मार्ग में धर्म ने कभी भी बाधा नहीं पहुँचायी। मनुष्य जीवन की विभिन्न नैसर्गिक प्रवृतियों में धार्मिक प्रवृति भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं। यही प्रवृत्ति मनुष्य को सदाचार, नैतिकता एवं मनुष्यता के विभिन्न गुणों से परिपूर्ण करती है।

'आहार निद्रा भय मैथुनंच, सामान्य मे तत्पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो धर्मेन हीना: पशुभि: समाना ।'

अर्थात् आहार, निद्रा, भय एवं मैथुन की प्रवृतियाँ तो मनुष्य एवं पशु दोनों में समान ही हैं। केवल धर्म ही एक विशिष्ट प्रवृत्ति है जो मनुष्य को श्रेष्ठता प्रदान करती हैं। केवल मनुष्य में ही शरीर बोध के साथ आत्मबोध भी होता है। मनु स्मृति में भी धर्म के सम्बन्ध में कहा गया है—

'धारणात् धर्ममित्याहु धर्मो धारयति प्रजा ।'

अर्थात् जिसे व्यक्ति और समाज मिलकर धारण करे वही धर्म है और धारण करने वाले कौन गुण हैं इस सम्बन्ध में मनु ने ही कहा है—

"धृति: क्षमा दमोस्तेयं शौर्य इन्द्रिय निग्रह: ।
धी: विद्या सत्यम क्रोध: दशकम् धर्म लक्षणम् ।"

धैर्य और क्षमाशीलता तो मानव का आभूषण है। इसके अतिरिक्त पराए धन के प्रति अरुचि, शारीरिक एवं मानसिक पवित्रता, ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेंद्रियों पर नियंत्रण, ज्ञान अर्जन, विद्या, विवेक-शीलता, सत्य, अक्रोध आदि ऐसे श्रेष्ठ गुण हैं, जो मानव के धारण करने योग्य हैं। यही धार्मिक गुणों के लक्षण हैं।

स्वामीजी ने भी कहा था—

Religion is realisation. Religion is that which turns least into man and man into God.

उनके अनुसार प्रत्येक धर्म में महान और सच्चरित्र नर-नारियों का जन्म हुआ है। इस प्रभाव के होते हुए भी यदि कोई यह स्वप्न देखे कि अन्य सभी धर्म लुप्त हो जाएँगे, एकमात्र उसी का धर्म बचा रहेगा तो यह निरी कल्पना होगी। संसार में जितने भी धर्म हैं, उनकी उपासना प्रणाली में विभिन्नता होते हुए भी वे वस्तुत: एक ही हैं। कुछ लोग मंदिरों में पूजा करते हैं, कुछ अग्नि की उपासना करते हैं तथा कुछ ऐसे भी हैं जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास ही नहीं करते। सब अपनी-अपनी जगह ठीक हैं। यदि प्रत्येक धर्म के सार, उनके मूल धर्म, उनके वास्तविक सत्य के ऊपर विचार कर देखें तो वे सर्वथा अभिन्न हैं।

प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव जन्म से ही भिन्न होता है और बना ही रहेगा। समस्त संसार किसी समय एक धर्मावलम्बी नहीं हो सकता। इसका मुख्य कारण भावों की विभिन्नता है। यदि संसार एक धर्मावलम्बी बन जाये तो संसार का सामंजस्य नष्ट होकर उसमें विश्रृंखलता आ जाएगी। अस्तु मनुष्य

को अपनी प्रकृति का अनुसरण करना चाहिए। अपने भावानुरूप मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए। तब वह मनुष्य उन्नति करने में समर्थ होगा। भारत में विविन्न धर्मों का कभी विरोध नहीं था वरन् सभी धर्म स्वाधीन भाव से अपना कार्य करते रहें। यहाँ यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि विभिन्न धर्मों में विरोध तब उत्पन्न होता है जब मनुष्य ऐसा विश्वास कर लेता है कि सत्य का मूल मंत्र मेरे ही पास है और जो मनुष्य मुझ जैसा विश्वास नहीं करता वह मूर्ख है, और दूसरा सोचता है कि अमुक व्यक्ति ढोंगी है। अत: विभिन्न धर्मों का होना निर्विवाद सत्य है। लेकिन सब एक हैं, सबका मूल मंत्र एक है। हमारा धर्म हमें सिखलाता है कि संसार के सभी प्राणी हमारी आत्मा के विविध रूप मात्र हैं। क्रिया तथा प्रतिक्रिया इन दो शक्तियों से मनुष्य मननशील हुआ है। यदि इन शक्तियों का प्रयोग मन पर न होता तो मनुष्य कुछ सोंच भी नहीं सकता। इतना ही क्यों, वह मनुष्य ही नहीं कहा जा सकता। अत: मनुष्यत्व कायम रखने के लिए एकत्व में अनेकत्व की आवश्यकता है।

सभी धर्मों में अच्छे लोग हैं। इसलिए सभी धर्म लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। अत: किसी भी धर्म या मनुष्य से घृणा करना उचित नहीं। लेकिन यहाँ एक प्रश्न उठ सकता है कि जो धर्म अन्याय की पुष्टि करे क्या उस धर्म के प्रति भी हमें सम्मान दिखाना होगा? कभी नहीं। इस धर्म को शीघ्रताशीघ्र दूर किया जाना चाहिए। नैतिकता के ऊपर ही सभी धर्मों की भित्ति प्रतिष्ठित है। अत: सदाचार को धर्म की अपेक्षा उच्च स्थान देना होगा। जैसे हम आत्म कल्याण करते हैं वैसे ही दूसरों का भी कल्याण करें। यही समग्र धर्म है, सिद्धान्त, कर्मकाण्ड, विश्वास, पुस्तकें, मंदिर अथवा अन्य उपासना केवल गौण हैं। धर्म का प्रयोग मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष के विकास करने में होना चाहिए। अत: स्वामीजी के शब्दों में—आज हमें एक ही महावाणी सुनाई दे रही है, निंदा पर्याप्त हो चुकी, दोष-दर्शन बहुत हो चुका, अब तो पुनः निर्माण का फिर से संगठन करने का समय आ गया है। अब अपनी समस्त बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र करने का, उनको एक केन्द्र में लाने का और उस सम्मिलित शक्ति द्वारा देश की प्रायः सदियों से रुकी हुई उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करने का समय आ गया है। घर की सफाई बहुत हो चुकी अब आवश्यकता है इसे नये सिरे से आबाद करने की। आर्य संतान आगे बढ़ो!

महाशिवरात्री (२७ फरवरी) पर विशेष

मुक्तिप्रदाता हैं शिव

—महेन्द्र कुमार

शिवरात्रि वैसे तो प्रत्येक मास की कृष्णपक्ष की चन्द्रोदयव्यापिनी चतुर्दशी को पड़ती है और शिव के भक्त उस दिन व्रतादि धार्मिक कृत्य करते हैं। शिव शब्द कल्याण अथवा वैभव, सौभाग्य का बोधक है। कल्याण नश्वर सांसारिक अस्तित्व से मोक्ष अथवा मुक्ति का पर्यायवाची है। जब मनुष्य घोर दुःख के सागर में निमग्न रहता है तब मात्र शिव नाम का उच्चारण ही उसके समस्त बाधाओं का निवारण कर देता है। ईशान संहिता के अनुसार फाल्गुन कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि को ही महाशिवरात्रि कहते हैं। इसी दिन चतुर्दश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक वैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्ग की प्रतिष्ठापना हुई थी। इसके माहात्म्य के बारे में कहा गया है कि :

शिवरात्रि व्रतं नाम सर्वपाप प्रणाशनम्।
आचाण्डाल मनुष्याणां भुक्तिमुक्ति प्रदायकम्॥

'शि' अक्षर पापनाशक है और 'व' मुक्ति का बोध कराता है। मनुष्यों का पापहरण करने वाला और उन्हें मोक्ष प्रदान करनेवाला शिव नाम स्मरण किया जाता है। संकटों का विनाश करने और परमानन्द-मोक्ष-प्रदान करने के कारण ही संहारकारी रुद्र को शिव की सार्थक संज्ञा प्राप्त हुई है। भक्तिपूर्वक शिवनाम उच्चारण करने से यह निश्चित है कि मनुष्य के करोड़ों जन्म में अर्जित पाप नष्ट हो जाते हैं।

माधवीय-स्कन्द में वर्णित है कि शिवरात्रि के पावन पर्व पर ब्रह्म-परात्पर शिव की उपासना से श्रेष्ठ कोई अर्चना नहीं हो सकती।

विप्र श्रुति में भगवान शंकर अपनी शक्ति उमा को इस प्रकार निर्देश देते हैं, 'सती देवि! शिवरात्रि के दिन मनुष्यों को भक्तिपूर्वक शिव की आराधना करनी चाहिए।'

स्कन्द पुराण में तो औघड़दानी शंकर स्वयं इस पर्व के विषय में कहते हैं।

सप्त-सागर सूख सकते हैं, गगनचुम्बी हिमालय सिकुड़ सकता है अथवा सागर एवं पर्वत अपना स्थान परिवर्तन कर सकते हैं, किन्तु शिवरात्रि पर्व पर शिव की आराधना सतत् चलती रहेगी। मेरा जो भक्त शिव-रात्रि के दिन व्रत करता है वह मेरे गण के चिरन्तन उच्च स्थान को प्राप्त करता है। वह भक्त जीवन के समस्त भोगों का आनन्द प्राप्त कर अन्त में मुक्ति प्राप्त करता है। वह शिव साहचर्य में परम आनन्द का उपभोग करता है।

शिव पुराण में इस महानिशा में जागरण एवं अर्चन का माहात्म्य बतलाता है। 'शिवरात्रि के दिन जो मनुष्य रात्रि-जागरण द्वारा शंकर का चिन्तन करता है वह अन्त में शिव-समत्व प्राप्त करता है, चाहे वह विधिवत् अर्चना न भी कर सके।'

शिवरात्रि वेला में जो भी व्यक्ति शिव का ध्यान करते हुए आलस्य रहित नेत्रों द्वारा जागरण करेगा वह समान धर्मों के रूप में शंकर एवं पार्वती के निकट अविलम्ब ही सखा के रूप में प्रतिष्ठित होगा।

शिवरात्रि की वेला में आशुतोष को विल्व-पत्र अर्पित करने का भी बड़ा माहात्म्य है। अनुश्रुति है कि मार्गी

भक्त जितने बिल्व पत्र अर्पित करता है उसी के अनुसार दीर्घ जीवन प्राप्त करेगा। इसका अर्थ है कि भक्त के बिल्व-पत्र अर्पण से उसे दीर्घ जीवन प्राप्त होगा।

मालापर पंचाक्षर मंत्र 'नमःशिवाय' का जप करते हुए शिव का ध्यान करना सभी संकटों से मुक्ति पाने के लिए महौषधि माना जाता है। इस पवित्र मंत्र का वर्णन पाराशर संहिता के चिदम्बर रहस्य में विस्तारपूर्वक किया गया है। अनुश्रुति है कि इस मन्त्र का उद्भव देवी के निकट रहने वाले शुक के पंख से हुआ। मन्त्र के पांचों अक्षर शिव के पंच मुखों अथवा पंच तत्वों के प्रतीक हैं। इनमें 'न' आकाश तत्व का, 'मः' तत्पुरुष अथवा वायु का 'शि' अघोर अथवा अग्नि-तत्व का, वा' जलतत्व अथवा वामदेव और 'य' सद्योपात अथवा क्षितिज तत्व का प्रतिनिधित्व करता है।

इस सम्बन्ध में एक कथा पुराणों में इस प्रकार वर्णित है कि एक सघन वन में एक सुन्दर जलाशय था, जिसके किनारे पर एक बेल का पेड़ था। उसकी जड़ में भगवान शंकर की एक पाषाण प्रतिमा सुशोभित थी। उस जंगल के हिरण रोज उस तालाब में पानी पीने जाते और जल पीकर उस बेल की छाया में बैठकर विश्राम करते। एक दिन एक व्याध उस स्थान पर शिकार हेतु आया। वह बेल के पेड़ पर चढ़ कर बैठ गया और हिरणों के आने की प्रतीक्षा करने लगा। इतने में दो-चार हिरण आये। व्याध ने उन्हें देखकर अपने धनुष पर बाण चढ़ाया। व्याध के चढ़े हुए बाण को देखकर उनमें से एक हिरण ने व्याध से कहा –हे व्याध! आप बाण न चढ़ायें हम आपकी सेवा के लिए तैयार हैं परन्तु आप यदि हमें इतना अवकाश दे दें कि हम एक बार अपने बच्चों को देख आयें तो हम लोग स्वयं यहां आकर आपको आत्मसमर्पण कर देंगे।'

व्याध यह सुनकर हंसा और बोला—'क्या हाथ में आते हुए शिकार को छोड़ देना बुद्धिमानी है। मेरे बाल बच्चे भी तो भूख से तड़प रहे हैं।' हिरणों ने कहा— 'जिस तरह तुम्हें अपने बच्चों की याद सता रही है वैसे ही हमें भी अपने बच्चों की याद परेशान कर रही है। उन्हीं बच्चों के लिए हम तुमसे थोड़ा-सा समय चाहते हैं।

व्याध के मन में कौतूहल जाग उठा और यह देखने के लिए कि यह पशु भी अपने वचन का पालन कर सकते हैं, उसने सूर्योदय से पहले लौट आने का वचन लेकर उन्हें छोड़ दिया और हिरणों के आने तक वह जागता रहे इसलिए पेड़ से नीचे उतर कर बेल की पत्तियां गिन-गिनकर शिव के मस्तक पर चढ़ाता रहा। उधर हिरण अपने-अपने स्थान पर गये और बाल-बच्चों से विदा लेकर सूर्योदय से पहले व्याध के पास आ पहुंचे। हिरणों ने आगे बढ़कर व्याध से कहा 'व्याध! हम आ गये। किन्तु इसी बीच भगवान शंकर ने उसकी पाप-वृत्ति का हरण कर लिया था। उसके स्वभाव में सहज दयावृत्ति जाग पड़ी थी। इसलिए उन मूक पशुओं के वचन को पालन करने की मर्यादा देखकर उसे हर्ष हुआ और वह उनसे बोला 'आप सब तो आदर के पात्र हैं। आपका वध करना सद्गुणों को मार डालने के समान है। मैं आपका वध नहीं कर सकता।' व्याध की ऐसी सद्भावना देखकर वे पशु तो उसपर प्रसन्न हुए साथ में आशुतोष भगवान शंकर भी उस पर प्रसन्न होकर वहां प्रकट हो गये और बोले—'व्याध! जिस तरह इन मूक पशुओं का प्रतिज्ञा पालन देखकर तुमने उन्हें मृत्यु के भय से मुक्त किया है उसी तरह मैं तुम्हें मृत्यु भय से मुक्त करता हूँ और जीवन भर अपने बाल-बच्चों सहित सुखी रहने का आशीर्वाद देता हूँ। जाओ प्राणिमात्र पर दया करने का अभ्यास करो। तुम्हें और तुम्हारे परिवार को सुख-समृद्धि की कमी नहीं रहेगी।'

विमलागमः पंचाक्षरी कल्प के अनुसार 'जो मनुष्य पंचाक्षरी मन्त्र द्वारा सतत् अर्चना करता है अथवा जिस व्यक्ति की जिह्वा पर यह मन्त्र वास करता है चाहे वह विपत्तिग्रस्त, समाज बहिष्कृत, पापी अथवा निम्न कुलोत्पन्न ही क्यों न हो, वह अन्ततोगत्वा इस पंचाक्षरी मन्त्र के जप द्वारा जो कि ज्ञान एवं प्रकाश का प्रतीक है—परमानन्द मोक्ष को प्राप्त करता है।

शिव भुक्ति और मुक्तिदाता हैं, वे ही परब्रह्म हैं। हिन्दू-जनचेतना का यह पवित्र स्वर युग-युगान्तरों की घाटियों को लांघता आज भी गूंज रहा है

(आज से साभार)

शिव का वरदान

—प्रेमशीला

भारत के देववर्ग में शिव ही सबसे प्राचीन देवता हैं। वे देवाधिदेव हैं। इन्हें अनादि-अनन्त परब्रह्म कहा गया है। काम के शत्रु होकर भी वह अर्द्धनारीश्वर हैं। शिव तो गुरुओं के गुरु हैं और श्मशान के निवासी होकर भी गार्हस्थ्य के चरम आदर्श हैं। भारतीय दाम्पत्य परम्परा में शिव से बढ़कर कोई पति नहीं। वह तो पार्वती के सम्मुख यहां तक कह देते हैं कि 'हे पार्वती, तुम्हारे तप से मोल खरीदा गया मैं तुम्हारा दास हूं।'

यूं शिव वस्तुतः परित्राण के देवता हैं। ऋग्वेद से चला आ रहा उनका परित्राण पुरुषार्थ सदैव अजस्र ही रहा है। अमृत प्राप्ति के लिए देव और दानव मिलकर समुद्र का मन्थन करते हैं। यह मन्थन सृष्टि के अनन्त विकास का प्रतीक है। मन्थन से विष निकलता है जिसे शिव अकेले ही पी जाते हैं और सृष्टि की रक्षा करके विकास की प्रक्रिया को प्रवृत करते हैं।

शिव के विभिन्न स्वरूप हैं किन्तु इन सब में इनका नटराज स्वरूप अत्यधिक भयंकर और प्रलयंकर है, फिर भी इनके अन्दर सम्पन्नता मौजूद है। कदाचित् इसी कारण हर युग में शिव की पूजा की परम्परा रही है। त्रेता युग में भी अनेक ऋषि-महर्षि शिव के भक्त थे। ऋषि मतंग भी शिव के अनन्य भक्त थे। मतंग ऋषि का आश्रम ऋष्यमूक पर्वत पर था। उन दिनों इस पर्वत पर सघन एवं मनोरम वन फैले थे। यहां के सरोवर में कमल खिले रहते थे और आम्रडालियों पर कोयल कूकती थी।

ऋषि मतग को शैव तत्व ज्ञान एवं शिवमहिमा स्तोत्र की गहरी जानकारी थी। इस जानकारी के बूते पर व सृजन तथा संहार दोनों कर सकते थे। यही वजह थी कि जब त्रेताकाल में वानर सुग्रीव अपने बड़े भाई बाली के भय से पम्पापुर का राज्य छोड़कर मतंग के आश्रम में पहुंचे तो ऋषि महोदय ने अपने तपोबल मे समूचे ऋष्यमूक पर्वत को ही बाली की पहुंच से निषेध कर दिया। यदि बाली इस वनांचल में पग भी रख देता तो जलकर भस्म हो जाता।

ऋषि मतंग ने ऋष्यमूक पर्वत के उच्चशिखर पर एक शिव मन्दिर बना रखा था। यहां सुबह-शाम शंख-घण्टे बजते थे। एक दिन इन शंख-घण्टों की आवाज सुनकर एक असुर कन्या मन्त्रमुग्ध जैसी खिंची चली आयी। असुर कन्या युवा थी और बेहद खूबसूरत भी। इसका नाम कर्कटी था। शिव की प्रतिमा के पास वह तन्मय होकर खड़ी हो गयी और ऋषि महोदय की पूजा विधि देखने लगी। फिर घण्टों बाद जब ऋषि की तन्द्रा टूटी तो वे इस असुर कन्या को अपने शिव मन्दिर के द्वार पर खड़ी देखकर चकित रह गये और पूछा 'पुत्री ! तम कौन हो ?'

'मैं एक दैत्यकन्या हूं देव', लड़की ने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक उत्तर दिया। ऋषि मतंग ने पुनः प्रश्न किया 'तुम्हारा नाम क्या है ? तुम रहती कहां हो ?'

'मेरा नाम कर्कटी है महोदय, मैं आपके आश्रम के निचले हिस्से में अपने भाई कर्कट के साथ रहती हूं।'

उत्तर सुनकर ऋषि महोदय हँस पड़े, फिर स्नेह पूर्वक प्रसाद देकर विदा करते हुए बोले—'पुत्री, तुम जब चाहो तब आश्रम में आ सकती हो।'

ऋषि से स्नेह पाकर कर्कटी अपने भाई कर्कट के साथ रोज आने लगी। वह ऋषि के पूजा कार्य में भी हाथ बंटाने लगी। मतंग ऋषि संस्कृत में बोलते थे। उनके सम्पर्क में रहकर कर्कटी भी संस्कृत बोलना सीख गयी और बड़े-बड़े कठिन श्लोकों को भी बोलने लगी।

एक शाम कर्कटी अपने भाई कर्कट के साथ पर्वत से नीचे उतर रही थी तभी एक दुष्ट राक्षस की नजर इस सुन्दरी पर पड़ गयी। वह मुग्ध हो गया। इस राक्षस का नाम 'स्वप्नासुर' था। वह अद्भुत मायावी था। स्वप्नासुर जिसे चाहता था, उसे बुरे सपने दिखलाकर इतना आतंकित कर देता था कि स्वप्न देखने वालों की हृदय गति रुक जाती थी और वह बेमौत मर जाता था।

स्वप्नासुर ने कर्कटी के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा परन्तु वह इनकार कर गयी। तब स्वप्नासुर ने उसके भाई कर्कट को सपने दिखलाकर मार डाला। भाई की इस दर्दनाक मृत्यु से कर्कटी बौखला उठी और स्वप्नासुर को फटकारती हुई बोली—'मैं तुम जैसे हत्यारे से विवाह नहीं कर सकती।'

अब स्वप्नासुर ने कर्कटी को भी दुःस्वप्न दिखलाने लगा और इतना आतंकित किया कि वह नींद लेने में भी डरने लगी। कर्कटी घबराकर ऋषि के समक्ष पहुँ[ची] और अपना दुखड़ा रोने लगी तो ऋषि का हृदय पसी[ज] गया। उन्होंने कर्कटी को शिव की आराधना करने [की] सलाह दी।

कर्कटी शिव की आराधना करने लगी। उसकी पूजा-अर्चना से देवाधिदेव खुश हुए और उपस्थित [हो] गये। इन्होंने कर्कटी के दुःख को समझा और स्वप्नासु[र] पर क्रोधित हो उठे। फिर तो देखते ही देखते इनकी मुद्रा नृत्य की बन गयी। इनके दाहिने हाथ में डम[रू] था और बायें हाथ में अग्निशिखाएँ थीं। डमरू से प्रल[य] संहारक ध्वनि निकल रही थी एवं इसी ध्वनि [से] अर्द्धचन्द्र की मुद्रा में आकर इन्होंने स्वप्नासुर [को] मार डाला।

कर्कटी तो खुशी से बेहाल हो गयी। वह शिव[के] चरणों पर लोट गयी। शिव ने उसे वरदान दिया[कि] आज से तुम हिमालय देश की रानी रहोगी और [जो] कोई भी तुम्हारे नाम का स्मरण करके सोयेगा [उसे] गहरी नींद आयेगी और वह बुरे सपने नहीं देखेगा।

हिमालय स्योत्तरे देशे कर्कटी नामः राक्षसी,

तस्याः स्मरण मात्रेण दुःस्वप्नशमितिव्रजेश।

शिव का यह वरदान आज भी सर्वसुलभ है। जि[स] किसी व्यक्ति को नींद न आती हो या नींद में बुरे सपने आते हों वह सोते समय उक्त पंक्तियां पढ़कर और शिव तथा कर्कटी के नाम का स्मरण करके सोये तो बुरे सपने शर्तिया नहीं आयेंगे और नींद भी गहरी आयेगी।

(आज से साभार)

जीवन की समस्त लयों के अनुकूल

पी य र ले स

दि पीयरलेस जेनरल फाइनेन्स एण्ड इन्वेस्टमेन्ट कं० लिमिटेड
पीयरलेस भवन
३, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता—७०० ०६९

भारत की वृहत्तम नॉन-बैंकिंग बचत कम्पनी

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.-१४-८३

विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्दजी की बहुप्रतीक्षित बृहत् जीवनी

युगनायक विवेकानन्द

तीन खण्डों में

स्वामी गम्भीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की यह मूल बंगला जीवनी
उनका अत्यन्त प्रामाणिक और अन्तर्दृष्टिसम्पन्न
जीवन-चरित मानी जाती है। सर्वदूर समादृत यह ग्रन्थ अब
हिन्दी-भाषी पाठकों को उपलब्ध हुआ है। हिन्दी में
स्वामी विवेकानन्दजी के बृहत्, प्रमाणभूत जीवनी का
अभाव था, जिसकी पूर्ति इस प्रकाशन से अब
हो गई है।

हर खण्ड करीब डमाई ४०० पृष्ठों का है।

हर खण्ड का मूल्य रु. ५०/- *तीन खण्डों का एकत्रित मूल्य रु. १२०/-*

प्रकाशक :

रामकृष्ण मठ

(प्रकाशन विभाग), धन्तोली, नागपुर-४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सईदपुर, पटना-४ में मुद्रित।